जमाने की मांग

धीरेन्द्र मजूमदार

अखिल भारत चरखा संघ, सेवाग्राम

दिसंबर १९४८] [मूल्य दस आना

प्रकाशक—

कृष्णदास गांधी,

मंत्री,

अखिल भारत चरखा संघ, सेवाग्राम, वर्धा

प्रथम संस्करण २०००

मुद्रक—

नारायणदास जाजू

मुख्य प्रबंधक,

श्रीकृष्ण प्रेस, वर्धा

प्रस्तावना

गत सितम्बर में महाकोशल प्रांत के दौरे मे धीरेंद्र भाई ने विभिन्न स्थानों मे विभिन्न जमात को चर्खा संघ की नई योजना समझाने के लिये कई भाषण दिये थे। महाकोशल चर्खा संघ के मंत्री श्री दादाभाई नाईक ने उन भाषणों का सारांश लिख लिया था। प्रांत के बहुत से मित्र चाहते थे कि उन्हें आम लोगों के पास पहुंचा दिया जावे। इस कारण उन्हें पुस्तिका रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इन्हीं भाषणों से संबंध रखनेवाला श्री कृष्णदास गांधी का भाषण भी इसमे संमिलित कर दिया है। आशा है आज के नवजवान इस पुस्तिका की बातोंपर गम्भीर विचार कर कार्य-क्षेत्र में आयेंगे।

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका

शिक्षित युवकों से

नवजवानो,

आपके सामने विश्व-विद्यालय में चरखे के बारे में भाषण करने का शायद मेरा पहला मौका है। आप युवक हो, बुद्धिवादी हो, हर बात तर्क की कसौटी पर कसना चाहते हो। 'चरखे से ही स्वराज्य मिलेगा', ऐसा गांधीजी मरते दम तक कहते रहे हैं। उसके लिए लाखों कुरबानियां हुईं। कुरबानी करने वालों में कितने ही विद्वान थे। क्या उन्होंने बिना सोचे समझे त्याग किया? क्या उन कुरबानियों का नतीजा आज हम राजनैतिक आजादी के रूप में नहीं देख रहे हैं? पर आश्चर्य की बात है कि आज भी चरखे के अस्तित्व के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किए जाते हैं। चरखे का स्थान क्या है? क्या अभी भी उसकी जरूरत है? जिस प्रकार के सवाल उठाये जाते हैं। हमारा चरखा देहात की छोटी सी चीज! छोटी सी काम की बात और यहाँ पर तो सारा बौद्धिक वायुमण्डल है। जिसमें ये बड़े बड़े प्रश्न!

आज सवाल उठता है कि यदि चरखा स्वराज-प्राप्ति के लिए था, तो अब तो स्वराज मिल गया, फिर चरखे की क्या जरूरत है? मैं मानता हूं कि यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है क्योंकि प्रश्न परिस्थिति से उठते हैं, वे उससे सम्बद्ध होते हैं। कोई भी बड़ी से बड़ी चीज चाहे दर्शन या फिलासफी ही क्यों न हो, यदि जमाने की माग पूरी नहीं करती, दुनिया की समस्या का हल नहीं निकाल सकती, तो वह निकम्मी है। अतः आपके सवाल का जवाब चरखा संघ न दे सके तो उसका अस्तित्व नहीं रह सकेगा, चाहे उसकी सिफारिश बड़े से बड़ा अवतार क्यों न करे।

एक ग्रामीण जायदाद का मुकदमा दायर करता है, बड़ी दौड़-धूप के बाद डिग्री उसके हक में मिल जाती है। वह प्रसन्न होता है, खुशिया मनाता

है। हमें भी स्वराज की डिग्री मिल गयी, हमने भी साल भर तक धूम-धाम से खुशियां मनायीं। मगर स्वराज मिल जाने से क्या सब चीजें अपने आप ही मिलने लगीं! आप मुँह ताकते ही रह गये और आज नाउम्मीद भी हो रहे हो। आपके दिल में शंकाएँ भी उठने लगी हैं। अतः आज की हालत में हमें गहराई और विस्तार पूर्वक विचार करना है कि क्या वर्तमान परिस्थिति में चरखे का कोई स्थान है? एक साल पहिले अंग्रेजी राज हटाने की समस्या थी, आज स्वराज की समस्याएँ हैं, इनमें भी दो प्रकार की समस्याएं हैं—

(अ) तात्कालिक समस्याएँ।

(ब) मानवता की स्थायी समस्याएँ।

तात्कालिक समस्याओं में भी दो प्रकार की समस्याएँ आती हैं। एक तो राष्ट्रीय समस्याएँ और दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ। हम तात्कालिक समस्याएँ पहिले लें। हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़े। युद्धकाल में कभी वे और कभी हम रक्षात्मक तरीका अख्तियार करते रहे। वादी-प्रतिवादी, मुद्दई-मुद्दालेह जैसा चलता रहा। ब्रिटिश पार्लमेण्ट के एक्ट के रूप हमें आजादी की डिग्री मिली। किन्तु उस पर कब्जा किस प्रकार मिले? यह सोचने की बात है। साथ ही किसको मिले? यह भी बड़ी समस्या है। देश के कुछ नेताओं ने क्रान्ति करके हिन्दुस्तान को स्वराज की डिग्री दिलायी। जिस सम्पत्ति के मालिक तो सम्पत्ति पैदा करनेवाले उत्पादक श्रेणी के लोग हैं, हम तो केवल उनके वकील हैं, डिग्री मालिक के हक में मिलती है, न कि पैरवी करने वाले को। जनता के राज के नाम से हमने डिग्री दिलायी है। अब आप कब्जा दिलाइए। आप जानते हैं कि डिग्री मिलने पर भी जायदाद का कब्जा पाने में कई कठिनाइयाँ होती हैं। पहले तो कब्जेदार भिन्न-भिन्न बहाने से कब्जा देने में आना-कानी करता है। फिर दूसरी कठिनाई डिग्रीदार यदि कमजोर हो तो उसके साथ मिला हुआ बड़ा आदमी स्वयं कब्जा कर लेता है। अथवा कभी-कभी वकील अपनी फीस में ही जायदाद लिखा लेता है। छोटी जायदाद पर कब्जा पाने के जितने तरीके देश में हैं वे सब लागू होते हैं।

ब्रिटिश जन किसी न किसी बहाने कब्जा जमाये रखने के फेर में अब भी पड़े हैं। दूसरी ओर आपके पूंजीपति, सामन्त तथा महन्त आदि हितैषी बनकर स्वयं स्वराज हड़प जाना चाहते हैं। साथ ही हमारे काँग्रेस वाले अपने त्याग-तपस्या की फीस के बदले उसपर अधिकार कर ले सकते हैं। आज के नव जवानों का काम है कि वे इन तीनों खतरों से स्वराज को बचाकर भारतीय जनता को उसका कब्जा दिलावे। डिग्री मिलना आसान था, उसके लिए तो घर का एक बूढ़ा अतिरिक्त आदमी भी पैरवी कर सकता था। पर कब्जा दिलाना कठिन है, उसके लिए हमको जोखिम उठाने की जरूरत है। साथी-संगी, सगे-सम्बन्धी चाहिए, हिम्मत और ताकत चाहिए। अतः हर एक नव जवान का फर्ज है कि वह इस मोर्चे में शामिल है।

मुझे तो भय है कि अंग्रेज कहीं डिग्री को रद्दी न बना दें। अंग्रेज कौम बैरागी नहीं है। उनका इतिहास देखिए। उनका तरीका पूंजीवादी है, वे सिकन्दर जैसे भारत को जीतने नहीं आए थे, उनके मन में राज था और वह मुख्यतः व्यापार की दृष्टि से आये थे। उनका साम्राज्य पुराने ढंग का नहीं था। वे बनिया हैं। बनिया अपना पडता देखता है। उन्होंने देखा कि गद्दी पर कब्जा करने से पूंजी बढ़ेगी। गद्दी लेना उस समय, उस परिस्थिति में आसान था। उन्होंने गद्दी ले ली। राष्ट्रीय आन्दोलन जितना बढ़ गया है कि गद्दी से पूंजी बढ़ना तो मुश्किल था बल्कि नुकसानदेह होने का मौका आया तो उन्होंने गद्दी छोड़ दी। बनिया को जमीन्दारी में पडता नहीं पड़े तो वह उसे बेचकर महाजनी करता है, अंग्रेजों का तरीका भी यही है। हम इसे जरा देखें।

पिछले महायुद्ध में हिन्दुस्तान लड़ाई का क्षेत्र न होते हुए भी यहाँ पर कीमत ३५० प्रतिशत बढ़ी और इंग्लैण्ड में युद्ध-क्षेत्र होने पर भी ३० प्रतिशत ही बढ़ी और उसपर जनता तूफान मचाने को तैयार हो गयी। यहाँ तो लड़ाई में शामिल होकर भी इतने आदमी नहीं मरे, बंगाल में बिना लड़े ३० लाख आदमी मौत के मुँह में चले गए। स्वयं अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार किया है कि यह मुद्रास्फीति मनुष्यकृत अकाल का नतीजा है। अर्थात् दुश्मन के हाथ कुछ लगे न इसलिए मजबूरी हालत में सोच-विचार कर,

आयोजन के साथ, जानबूझकर अंग्रेजों ने भारत को तबाह और बरबाद कर दिया है। और भविष्य के लिए बहुत बड़ी समस्या उन्होंने भारत के सामने रख दी है। दूसरी ओर देखिए, अंग्रेजों ने गद्दी भले ही छोड़ दी है मगर उनका कब्जा हमारी खोपड़ी पर तो अभी ज्यों का त्यों है। हमारे दिमाग पर अंग्रेजियत की बू-बास तो बनी पड़ी है। मेकाले ने जिस हेतु आज की शिक्षा-प्रणाली बनायी वह अपना काम 'ठीक' कर रही है। हमारे यहाँ कहा जाता है कि दुरात्मा मरता है तो प्रेतात्मा बनकर ज्यादा फैलता है। अंग्रेज चल बसे, मगर उनका असर बढ़ गया। आज पहिले से भी अधिक अंग्रेजी स्कूल चालू किए जाते हैं, आवश्यकता की पूर्ति की समस्या का हल अब भी उनके तरीके से निकालने के फेर में हैं। अंग्रेजों ने ठीक अनुमान लगाया था कि, भारतीयों को ऐसी शिक्षा दी गयी है कि वे गांधीजी को छोड़कर हमारे ही तरीकों पर चलेंगे। महात्मा गान्धी की चाहे जितनी मौखिक और भावनात्मक पूजा करें मगर उनके तरीकों को नहीं अपनायेंगे।

गान्धीजी ३० साल तक कहते रहे कि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति स्वावलम्बी होकर ही कीजिए। मगर लोग आज भी हर स्थान रेल, मोटर, बाजार, होटल आदि में चर्चा करते हैं कि सरकार क्यों नहीं आवश्यकताओं की पूर्ति करती।

वस्त्र की पूर्ति करनी है तो देश में चर्खे चलें या मिलें ? जवाहिरलालजी के पास कोई द्रौपदी तो नहीं है जिसके आर्तनाद पर भगवान कृष्ण दौड़े और वस्त्र-पूर्ति की समस्या हल करें। यदि चर्खा चलाना है तो कुछ इनेगिने व्यक्तियों से काम नहीं चलेगा। सब का सब समाज उसे स्वीकार करके ही समस्या हल कर सकेगा। यदि ऐसा न करें तो केन्द्र की ओर देखने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं। केन्द्र द्वारा होगा उद्योगीकरण। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं। उसे चलाने की क्षमता रखने वाला पूंजीपति ही सर्वेसर्वा होगा और निरुपाय होकर आपके नेताओं को उसीकी बात पर जाना होगा जिसके नाश का नारा आज न कितने वर्षों से लगाया जा रहा है।

अंग्रेज केवल आर्थिक ही नहीं साम्प्रदायिक मोर्चा भी खड़ा कर गए हैं। आप जेबकट का तरीका जानते हैं? एक सभ्यता पूर्वक आपको बातों में लगाता है, दूसरा धक्का देता है। आप क्रोध में आकर असावधान होते हैं, ऐसी दशा में तीसरा आपकी जेब पर हाथ साफ करता है। इसी प्रकार अंग्रेज आपके नेताओं से स्वराज की बात करते हैं। अंग्रेज आफिसर मुसलमान भाइयों को उकसाकर पाकिस्तान के लिए झगड़ा खड़ा करते हैं। अर्थात पाकिस्तान के अंग्रेज अधिकारी धक्का देने का काम करते हैं और फिर जब आप आवेश में अपनी साधारण स्थिति से गाफिल होते हैं तो पूंजीपति जेब काटने का काम अर्थात् शोषण करने में लग जाते हैं।

आप सोचेंगे कि हमारी राष्ट्रीय सरकार उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करके इन पूँजीपतियों को क्यों न हटा दें? आप तो जानते हैं कि दो मोर्चों पर लड़ना कठिन है। युद्ध कौशल, एक समय तो एक ही मोर्चे पर इंगित करता है। हिटलर ने इसीलिए स्टालिन से और स्टालिन ने तोजो से समझौता किया था। जब हिटलर दोनों मोर्चों पर लड़ने लगा तो हार गया। आर्थिक मोर्चे पर जमीन्दारी हटाना तो आसान है, क्योंकि जमीन्दार हमेशा ऐश-पसन्द और आराम-तलब होता है इसलिए वह बोदा होता है। उसमें बुद्धि का विकास नहीं हो पाता। साथ ही परावलम्बी भी है क्योंकि उसकी जमीन स्वयं उसके कब्जे में नहीं रहती। किसान-मजदूरों के भरोसे उसकी काश्त होती है। जमीन पर तो एक प्रकार से किसान का ही कब्जा रहता है। यदि किसान को पूरा कब्जा दिलाना हो तो वह एक पर्चे, डिग्री, हुक्मनामें या कानूनी फर्मान से ही दिलाया जा सकता है। मगर पूंजीपति परिश्रमी होता है। वह चतुर, चालाक, और अपने फन का माहिर होता है। साथ ही उसकी पूंजी भी उसके कब्जे में रहती है। उसे क्षणभर में भूमिगत करना उसके लिए आसान है। आप चाहे तुरन्त फर्मान निकालें, मगर उसके घोषित होते ही उसके अमल में लाने के पहिले पूँजी ऐसी गायब कर देंगे कि केवल ठीकरें या चिमनी ही हाथ लगेगी। पूँजीपति को हटाने में इगलैंड की मजदूर सरकार अभीतक कामयाब न हो सकी। यदि आप पूंजीपतियों से लड़ेंगे तो

वे अंग्रेज साम्राज्यवादियों से गठबन्धन करेंगे। तब आपकी हालत चीन जैसी झगड़े की अथवा यूरोप जैसी दलदल की हो जायगी। देश गृहयुद्ध से तबाह हो जायगा। इसलिए आपको पूंजीपति से समझौता करके ही औद्योगीकरण की समस्या हल करनी होगी।

आपने देखा कि पूंजीपति किसान को काश्त करने के लिए जमीन देता है। किसान सालभर कड़ी मिहनत करता है, कड़ी धूप में खून-पसीना एक करता है, बारिश में भीग-भीग कर खेतों पर काम करता है, शीत के कड़े झोंकों में ठिठुरता और खेतों की रखवाली करता है, मगर इस मशक्कत से पैदा किया अन्न वह क्या उपयोग कर पाता है? उसे तो खलियान से ही पूंजीपति बटोर लेता है। फिर किसान की तकदीर में अनाज का झड़न गांठ ही में पड़ा। थोड़ा बहुत अन्न और सड़ा-सूखा भूसा रह जाता है। ऐसी हालत में फिर किसान सालभर के पेट पालने के लिए महाजन का कर्जदार होता है और कर्ज भी महाजन की ही शर्त पर स्वीकार करता है। उसी की मरजी से फिर जमीन लेता है। इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी मजदूर-किसान को मिहनत और मालिक को उस मिहनत का फल मिलता रहता है। कदाचित तकदीर चेत जाये तो मजदूर एकाध खेत खरीद लेता है। भारतीय पूंजीपति के पास इस प्रकार से ही कुछ धन आ जाता है। मगर यह सब धन भी कितना होता है। हाँ, एकाध फर्म, एकाध मिल और सिनेमा-बिल्डिंग बना पाते हैं। क्योंकि ये लोग सौ वर्ष से जो भारतीय जनता का शोषण करते रहे उसका मुख्य हिस्सा अपने मालिक लंदन में रहने वालों के पास पहुँचा देते रहे हैं। भारतीय पूंजीपतियों के पास इतनी पूंजी नहीं है कि वे देश की आवश्यकता-पूर्ति की समस्या हल कर सकें। अतः उनकी बम्बई योजना में ४००० करोड़ रुपयों की पहिली किस्त विदेशों से ऊधार लेने की बात रखी गयी थी। इसलिए जब बिड़ला वगैरह इग्लैंड गए तो गान्धीजी ने कहा था कि वे शर्मनाक सौदा करने गए हैं। इस पर बिड़ला बिगड़े, नेतागण नाराज हुए, मगर महात्माजी अपने कथन पर अटल रहे। उन्होंने कहा था कि मैंने विचार पूर्वक यह उद्गार निकाले थे। इस प्रकार आवश्यकता-पूर्ति करने पर अंग्रेजी पूंजी यहाँ खपेगी। यदि

अंग्रेज गद्दी पर होते तो जाग्रत जनता उनके माल के बहिष्कार के लिए तुली रहती। गद्दी छोड़कर वे ज्यादा पूंजी लगायेंगे। परिणाम होगा कि देखने से कब्जा तो हमारे हाथ में है मगर भारतीय जिन्दगी पर दर असल कब्जा अंग्रेजों का ही होगा। यह बात तो उत्पादन की है। अब वितरण पर भी लगे हाथों विचार कीजिए। वितरण में अनेक पुराने दोस्त रायसाहबजी, हुजूर, पंडा, पुजारी, सामन्त-महन्त, दलाल-दूकानदार उनका साथ देंगे। वे उनकी दुम जैसे हैं और दुम शरीर से ज्यादा खतरनाक होती है। आप जानते हैं हनुमानजी ने नहीं, उनकी दुम ने लंका को जलाकर खाक किया था। इसलिए दुम से बचना जरूरी है। कहते हैं अंग्रेजी राजनीति दोस्ती की राजनीति है। इंग्लैंड का इतिहास देखिए। अंग्रेजों को सदैव उनके दोस्तों ने विजयी बनाया है। अतः ब्रिटिश पूँजीपति, उनके साथी भारतीय पूँजीपती और उनके दलाल आदि त्रिगुट के हाथ में आर्थिक जिन्दगी जायगी। फिर राजनैतिक-सामाजिक जिन्दगी जाने में क्या देर होगी? अंग्रेजों का बोझा हर हालत में ढोना ही होगा। फर्क इतना ही है कि पहिले वह बन्दूक का था आज वह 'सन्दूक' का होगा।

जनता को स्वावलम्बन द्वारा होश दिलाने का काम गान्धीजी ने जिस ढंग से बताया, वह नहीं किया गया। वे हमेशा कहते थे कि बेहोश जनता का जन-तंत्र हमेशा भीड़-तंत्र रहेगा। वह केवल भीड का जोश होगा, जन-जागरण न होगा। वह नाम मात्र को प्रजातंत्र कहलावेगा। आज शासन 'मतों' पर निर्भर होगा। हमने जनता को इतना ही सिखाया है कि हम काँग्रेसी गान्धी टोपी वाले भले हैं, अन्य सब बदमाश हैं। गान्धी वादी के डिब्बे में वोट डालो। जनता ने तो हमारे जरिए 'वोट' देना सीखा है इसलिए उतनी याद तो आज भी जनता के पास है। पर पूंजीपति मूर्ख नहीं है। वे इस बात को बखूबी जानते हैं कि 'जिसके हाथ में डोई उसका सब कोई'। यह हिन्दी की कहावत ठीक ही है। वे बहुत से गान्धी टोपी वालों को खरीद लेंगे। कोई पद से, कोई सन्मान से, कोई पैसे से, और कुछ सम्बन्धी-रिश्तेदार हैं ही। फिर खरीदे हुए लोगों के जरीए जनता की राजनैतिक जिन्दगी पर पूंजीपतियों द्वारा

कब्जा किया जायगा। आपने बन्दर, भालू, राक्षस और शेर के चेहरे लगाकर रास्ते में चलनेवाली लीलाएं तो देखी ही होंगी। अबोध बालक समझते हैं कि सचमुच, बन्दर, भालू, राक्षस, शेर बोल रहे हैं। उन्हें क्या मालूम कि चेहरों के पीछे दूसरा आदमी है। जनता बेहोश है, वह कैसे समझेगी कि इन चेहरों के पीछे अर्थात् तथाकथित गांधी टोपी वालों के पीछे पूंजीपति बोल रहे हैं। इस प्रकार पहिले के त्रिमुख के साथ मिलकर यह खरीदे राष्ट्रीय जन एक चतुर्भुज राक्षस की सृष्टि करेंगे। जिस राक्षस का आलिंगन जनता के लिए धृतराष्ट्र जैसा होगा। जिन्होंने स्नेह से बुलाकर लौह-शरीर भीम का भी कचूमर निकाल दिया था। हमें इस विनाश से तो बचना ही है-- आप सोचे समझे कि यह समस्या कैसे हल होगी। इस आपत्ति से कैसे निकल सकेंगे। यह समस्या तो आज है ही। केन्द्रीय उद्योग से हमें और भी अनेक समस्याएं ग्रास करनेवाली हैं।

पूंजीपतियों के जरिए केन्द्रित उत्पादन हो तो बनियाशाही और उससे मुनाफा खोरी, काला बाजार, अन्तर्राष्ट्रीय घातक स्पर्धा, युद्ध साहित्य का प्रचण्ड परिमाण पर निर्माण, तानाशाही युद्ध और विनाश का भय है। और यदि सरकार के जरिए केन्द्रिय उत्पादन हो तो नौकर शाही, घूसखोरी, पक्षपात, सरपट ढाँचा, वही अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा, युद्ध साहित्य, अधिनायकत्व, युद्ध और विनाश मुँह पसारे खड़े होंगे। इनसे कदापि जनतंत्र और विश्व शान्ति न होगी। फिर आज का तो अणुयुग है। इस प्रकार के युद्ध में केन्द्रित उद्योग एक दिन में नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे। तब आवश्यकता पूर्ति ही क्यों, अस्तित्व की समस्या तक विकट होगी। और उसका हल निकालने में हम असफल हुए तो हार माननी होगी। जनता ऐसे समय घबरा कर आसानी से अधिनायकत्व के पंजे में फंस सकती है। आपने देखा है कि केन्द्रित पद्धति को अपनाने वाला जापान एक अणुगोले से हार गया। पर जैसी-तैसी जल्दबाजी से निर्मित विकेन्द्रित पद्धति से चीन जापान के साथ १० साल लड़कर भी अजेय है।

अब हम अन्तर्राष्ट्रीय समस्या तथा स्थिति को सोचें। पहिले विश्व युद्ध के बाद एक नये राष्ट्र का निर्माण हुआ। वह था साम्यवादी सोवियत संघ रूस।

जो साम्राज्यवादी मुल्कों के लिए एक आव्हान-एक चुनौती था। वहाँ इन मित्र राष्ट्रों ने क्या नहीं किया? रूस के अन्दर के बड़े-बड़े किसानों को और मध्यम वर्ग के बुद्धिवादियों को धन द्वारा खरीद कर उभाड़ा और आन्तरिक घपला मचाया। जर्मनी, जापान, फिनलैंड, यूक्रैन, इटली, स्पेन आदि देशों में राष्ट्रीय अधिनायकत्व के गुट को बढ़ाकर बाह्यतः रूस को अन्य मुल्कों से अलहदा किया। गत दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात एक नया मुल्क भारत गान्धीवाद का नया आदर्श लेकर खड़ा हुआ है। उसका नेतृत्व इग्लैंड, अमेरिका, रूस के सम्मिलित नेतृत्व से ऊँचा है। रूस ने जन्मतः नेतृत्व का दावा नहीं किया था। पर भारत ने तो आजादी मिलने के पहिले ही एशिया के नेतृत्व की ओर कदम बढ़ाया, जैसा कि बाल हनुमान ने जन्मते ही सूर्य रूपी लड्डू को निगलने की कोशिश की। एशिया का एक बड़ा मुल्क चीन गृहयुद्ध में त्रस्त है। जापान जर्जरित पड़ा है। अतः भारत को दक्षिण एशिया का नेतृत्व स्वाभाविक रूप से मिलता तो इन पूंजीवादी साम्राज्यवादियों के लिए वह खतरा था। अतः भारत के खिलाफ उसी पुरानी कारगर भेद-नीति को अपनाया जा रहा है, जो कि आन्तरिक अशान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय एकाकीपने के नाम से ख्यात है। भारत के इस नेतृत्व को खत्म करने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ साम्प्रदायिक राक्षस खड़ा कर दिया है।

भारत के इर्दगिर्द सारे मुस्लिम राष्ट्र हैं। उन्हें दुश्मन बना देने से साम्राज्यवादियों का काम हो सकता है। इसलिए हिन्दू-मुसलमानों में एक दूसरे के प्रति द्वेष, नफरत पैदा कर अखण्ड भारत के दो टुकडे कर पाकिस्तान का निर्माण किया गया। सद्भाव से जो काम सदियों तक नहीं होता वह नफरत के नारे से नगण्य समय में सफल किया जा सकता है। जो अरब राष्ट्र सारी कोशिशों के बावजूद कभी संगठित न हो सके उनके बीच एक यहूदी राष्ट्र निर्माण होते ही उसकी द्वेष भावना पर वे तुरन्त एक हो गये। ऐसे ही भारत और पाकिस्तान में दुश्मनी बढ़ाने के लिये सीमा का सवाल पैदा कर साम्प्रदायिक समस्या बढ़ा कर और हैदराबाद के मामले खड़े कर अंग्रेज अपना उल्लू सिधा करना चाहते हैं। साथ ही वे चाहते हैं कि भारतीय

हिन्दू, हिन्दूराज, हिन्दुत्व के नारे पर भारतीय राष्ट्र को संगठित करें। ऐसा करने में उन्होंने उन्ही पुराने मित्र पूंजीपति, राजा-रजवाड़े, महन्त-पुजारी और छोटे दलालों को साथ लिया। और अगर गान्धीजी अपनी जान की बाजी लगाकर इसका मुकाबिला न करते तो वे करीब-करीब सफल भी हो गये थे। बापू के मरने से वह लहर दबी सही, लेकिन आज भी वह कोशिश जारी है। यदि वे सफल हुए तो हिन्दू राष्ट्र के नाम से भारत मुस्लिम विरोधी रूप में दुनिया की निगाह में दिखेगा और उसके दाक्षिण-पूर्व एशिया के नेतृत्व तथा पश्चिम पूर्व गठबन्धन में बाधा उपस्थित होगी। वह अकेला पड़ जायगा। आज के जमाने में कोई मुल्क अकेला नहीं रह सकता है। उसे जिन्दा रहना है तो वह अपने नेतृत्व के लिए दल बनाए या दूसरे किसी पक्ष में शामिल हो जाए। जो हमारे साथ नहीं वे हमारे दुश्मन हैं, यह आज कूटि नीति का तंत्र है। इसलिए हर एक को सोचना ही है कि एक दल में रहकर आधे दुश्मन बर्दाश्त किए जायं। पर अलग रहकर सब को दुश्मन नहीं बनाना है। क्यों कि अन्तर्राष्ट्रीय अलहदगी भयानक है। तब तो भारत को सोवियट गुटबंदी में शामिल होना होगा या ऍंग्लो सैक्सन दलबन्दी में जाना होगा। चूंकि पूंजी इंग्लैंड-अमेरिका के पास है और रूस से हमारा सीधा सम्पर्क नहीं है, हमें झक मार कर आंग्लो-सेक्सन ग्रुप में जाना होगा। जिससे बचकर रहना है तो एशियाई नेतृत्व करना होगा। यदि हमें एशिआई नेतृत्व करना है और उसके बलपर दुनिया के भेदभाव मिटा कर शान्ति का सन्देश देना है तो हमें धर्म-मजहब के संकुचित दायरे से उठ कर मानवता के आधार पर एक राजनीतिक तथा सामाजिक प्रणाली निर्माण करनी होगी। हमें हिन्दुत्व तथा हिन्दुराज्य की बात छोड़कर भारत को राष्ट्रीयता के आधार पर संगठित करना होगा।

बहुत से लोग यह कहते हैं कि तात्कालिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय और साम्राज्यवादी समस्याएं तो हैं ही और हमें उनका मुकाबला करना है लेकिन हमें स्थायी रूप से भी दुनिया के आर्थिक ढॉचे में जिन्दा रहना है। दुनिया उद्योगीकरण से जनता को प्रचुर परिमाण मे उपभोग का सामान

देकर उनका जीवनस्तर ऊँचे किए हुए है। हमें यह भी कहा जाता है कि यंत्रों के जरिए उत्पादन किया हुआ माल सस्ता पड़ता है। अतः यांत्रिक पद्धति के परिणाम को भी देख लेना चाहिए। एक यंत्र हजारों को बेकार बनाता है। हजारों के नैतिक जीवन को बर्बाद करता है। बम्बई, कानपुर आदि की मजदूर आबादियों का यदि आप निरीक्षण करें तो यह बात तुरन्त आपकी समझ में आ जायगी। फिर यंत्र मानव-आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माल नहीं निकालता। वह मुनाफाखोरी के लिए चीजें बनाता है। आज मानव की प्रथम आवश्यकता है अन्न की, पर मलाबार के खेतों में चावल के बदले नारियल, बंगाल में सन, बरार में ज्वारी के बदले कपास, गुजरात में तम्बाकू अन्यथा तिलहन की काश्त की जाती है। वह खाने के लिए नहीं। यदि ऐसा होता तो कुछ संतोष मान लेते। वह हमाम, सनलाइट साबुन बनाने के लिए किया जाता है। लोग चाहे भूखों मर जाएं पर रईसों और बाबुओं की चमडी मुलायम, साफ रखना ज्यादा जरूरी है। हालांकि बर्नार्ड शा जैसे शालश साहित्यिक कहते हैं कि साबुन अच्छी चीज नहीं है, वह अक्षोभक है, जैसा कि हमारे नाजुक अवयव आंख, नाक के अन्दर की त्वचा आदि को उसके लगने से स्पष्ट अनुभव मिलता है। जिस कारण खाने के लिए अनाज मिलना तो दूर रहा शुद्ध तेल भी मिलना कठिन हो गया है। इधर वनस्पति घी के नाम पर शुद्ध तेल और घी को नष्ट किया जा रहा है, जिन पर मानव, पशु और उनकी खेती अवलम्बित है। यह सब इसलिए कि महाजनों को शुद्ध तेल-घी में मुनाफे की गुंजाइश नहीं है। दूध जो कि बच्चों की आवश्यक खुराक है उनके लिए चाहे न मिले पर युद्ध के लिए आवश्यक सामान उससे बनाने पहिले जरूरी है। देश में करोडों की तादाद में जगंली खजूर और ताड के पेड गुड और चीनी बनाने को पडे हैं, लेकिन गेहू के खेत में चीनी बनाने के लिए गन्ना लगाया जाय, क्यों कि खजूर-ताड की चीनी मिल में बन नहीं सकती। इस प्रकार स्थानीय आवश्यकताओं की अवहेलना कर जब मुनाफे की चीजें पैदा की जाती हैं तब उनकी खपत के लिए अन्य देशों के बाजारों पर कब्जा करने की होड लगती है। उसी समय अन्तरराष्ट्रीय युद्ध की आशंका

खड़ी होती है। विदेशों में फंसी पूंजी की रक्षा के लिए सेनाएं रखनी पड़ती हैं। फिर युद्ध सामग्री के उत्पादन में सारी शक्ति लगानी पड़ती है। इस प्रकार फिर युद्धकालीन अर्थ-व्यवस्था के नाम पर अधिक कर लिए जाते हैं। खाने को कम दिया जाता है। रहने के मकानों की उपेक्षा होती है। शिक्षा को कम कर दिया जाता है। सैनिक भर्ती अनिवार्य कर दी जाती है। नए-नए फर्मान निकाले जाते हैं। अन्ततः युद्ध छिड़ कर भीषण मानव संहार होता है। उसमें मानवता के नामपर नवयुवक वर्ग को होम दिया जाता है। फिरपर भी यह कहने की धृष्टता की जाती है कि यंत्र द्वारा चीजें अधिक मात्रा में मिलती हैं। इसके अलावा यंत्रमय और बड़े बड़े उद्योगों के लिए दी जाने वाली सरकारी मान्यताएं, यातायात की सहूलियतें, उनके लिए होने वाले शास्त्रीय संशोधन इन सब बातों पर होनेवाले विशाल खर्चों को तो गिना ही नहीं जाता है। उलटे ग्राम उद्योगों के मार्ग में आनेवाली रुकावटें, उलझनें, बाधाएं, उपेक्षा का कोई खयाल नहीं किया जाता। इसी तरह पूंजीवाद, केन्द्रीय उद्योगों की अन्तरराष्ट्रीय स्पर्धा, युद्ध, मानव संहार और पुनः इनसे होने वाली क्षति की पूर्ति के लिए यन्त्रीकरण ऐसा शनीश्वर का फेरा! यह कुचक्र अखंड घूमता रहता है। यह तो उस राक्षस जैसा है जिसको यदि काम न दो तो वह काम देने वाले को ही खा जायगा। ऐसी दशा में एक लकड़ी गाड़कर उसे चढ़ने-उतरने का काम देना आवश्यक हो जाता है। आज भी दुनिया उसी लड़ाई के खतरे में है। अतः हमारी योजना में इस स्थिति को देखकर ही आप कहेंगे कि अब तो शान्ति है। यह गलत धारणा है आपकी!, किन्तु यह समय शान्ति का नहीं विश्रान्ति का है। खेल का 'इन्टरवल' है। दो संघर्षों के बीच का विराम है, जहाँ आगे की तैयारी की जाती है और पिछली थकावट के लिए कुछ आराम किया जाता है। आप चाहे जिस ओर निगाह डालिए बर्लिन, चीन, यूनान, युगोस्लावेकिया, फिलस्तीन, पाकिस्तान, काश्मीर, हैदराबाद, बरमा, मलाया, इन्डोनेशिया सब जगह तृतीय महायुद्ध की बारूद रखी जा रही है। सलाई लगाने भर की देर है, आग भडक उठेगी। कहा जाता है कि काश्मीर, हैदराबाद या पाकिस्तान का हमपर अघोषित युद्ध है। हैदराबाद, काश्मीर

तो क्या पाकिस्तान भी हमारे सामने कुछ नहीं है। कुछ नहीं का मतलब यह है कि असल बात ऊपर जैसी नहीं है। असल बात तो यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से १८५७ के घोषित युद्ध की आखिरी लड़ाई है। यदि हम आज ब्रिटिश साम्राज्य की क्षत्र-छाया स्वीकार कर लें तो यह देखते-देखते लुप्त हो जाए। इससे हमारे मित्र अफगानिस्तान, चीन से अलग रखने के लिए उन्हें गिलगिट क्षेत्र हमसे छीनना है। ये उनके हथकण्डे हैं। साम्राज्यवाद का यह एक स्थायी खतरा है जो शान्ति को नष्ट करना चाहता है।

पर यदि बहस के लिए मान लिया जाय कि अभी शान्ति है, और सोचें कि कम से कम शान्तिकाल में हम यंत्रों का उपयोग क्यों न कर लें? तो उनके लिए राष्ट्रीय आयोजन करना होगा। उसमें वर्षों लगेंगे। वह कोई एक दिन, माह, साल में तो होने को नहीं। मुद्दत के बाद बनाया आयोजन अमल में लाने का समय आवेगा। तब तक युद्ध की चिन्गारियाँ फैल चुकी होंगी। तब हमारा तथाकथित केन्द्रित आयोजन धरा रह जायगा और युद्धकालीन विकेन्द्रीकरण को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना होगा। यह अणु-युद्ध थोड़े ही समय का होगा। जिससे मानवता यदि बच पायी तो युद्धकाल में अचानक विकेन्द्रित प्रणाली नहीं खड़ी की जा सकती। उसका हमें पहिले परिपूर्ण अनुभव चाहिए। उसके हम माहिर हों, तभी तो विजय की आशा रख सकेंगे। इसलिए केन्द्रित और विकेन्द्रित व्यवस्थाओं की यह बराबर कबड्डी हमें सदा के लिए खदेड़ेगी। राष्ट्रीय आयोजन न तो बराबर बदला जाता है और न वह एकान्तिक समस्याओं के लिए हो सकता है। वह तो ऐसा चाहिए जो भविष्य में युद्ध और शांति दोनों के लिए एकसा उपयोगी हो। इस दृष्टि से युद्ध के खतरे को सदा के लिए हटाने वाली, चिर शान्ति स्थापन करने वाली, शान्ति और युद्धकाल में भी असरकारी गान्धीजी की विकेन्द्रित उत्पादन पद्धति को अपनाना होगा। इसका मध्यबिन्दु होगा चर्खा और हल, जिसके इर्द-गिर्द होंगी बुनियादी तालीम, सहकारी उत्पादन समिति, पंचायत, निसर्गोपचार और ग्राम सेवा दल। इसके मानी हैं कि हमें छोटे छोटे पैमाने पर जगह-जगह ग्राम-उद्योग-पद्धति चलानी होगी, जिससे मनुष्य मशीन का

पुर्जा न बने, वह उसका मालिक ही रहे। इसमें व्यक्ति के हाथ में उत्पादन-सामग्री के साधन रहेंगे, सारे ग्राम उद्योगों का तरीका रहेगा। अतः हमें कदापि केन्द्रीय उत्पादन और राज्यशक्ति का भरोसा नहीं करना चाहिए। हमें अपना काम जनशक्ति के दम पर ही चलाना होगा।

पहिले जनता आत्म-निर्भर थी। वह पंचायतों के द्वारा अपना सारा काम कर लेती थी। राजा का काम केवल दुष्ट-दलन और शिष्ट-पालन का होता था।

उस समय राजा के होते हुए भी जनतंत्र था। क्यों कि शासन-सूत्र वशिष्ट जैसे पुरोहितों के हाथ में था, जो जनता के भरोसे जीवन-यापन करते थे। राजा को उनकी सलाह माननी पड़ती थी। क्यों कि जनता उनकी पीठ पर थी। जब पुरोहित राजा के आश्रित बने, तब उनकी शक्ति-बुद्धि बेकार होकर भीष्माचार्य, द्रोणाचार्य जैसों के रहते हुए भी महाभारत युद्ध हुआ। और सारा भारत पतित होकर क्षीण हो गया। आज यदि जनता के नुमायंदे राजशक्ति की ओर ताकते रहेंगे तो यहाँ नाममात्र को जनतंत्र रहेगा। वास्तव में वह शासक-तन्त्र हो जायगा।

अंग्रेजों ने जान बूझकर अपने फायदे के लिए हमारी आत्मनिर्भर पद्धति को विनाश किया। पंचायतें तोड़कर उन्होंने अदालतें बनायीं, जमीन्दारी प्रथा कायम की। ग्रामोद्योग नष्ट किए और विलायती माल को बढ़ावा दिया। परस्पर सहानुभूति की विवशता खतमकर संकुचित व्यक्तिगत शहरी तरीका लाए। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आधार तोड़कर उन्होंने अपना जाल फैलाया और अपनी गद्दी के नीचे धर दबाया।

हमें जानना चाहिए कि आदमी नहीं, गद्दी, ढाचा या तरीका असर कारक होता है। आज भले ही अंग्रेज गद्दी से ढकेल दिए हैं, उनकी बनाई गद्दी तो मौजूद है। केवल आदमी बदलने से *काम नहीं चलता*। यदि मशीन वही है तो केवल हैण्डल चलाने वाला बदल कर आप सोचें कि माल, ठप्पा, आकृति, ढब, डिजाइन बदल जायं तो यह कैसे होगा। फर्क इतना ही होगा कि

पहले चलाने वालों ने उस यंत्र को बनाया था। उसे चलाने में वह पूर्ण अभ्यस्त थे। अतः उनकी डिजाइन साफ़ निकल्ती थी। हम नौसिखुए हैं, इसलिए हमारी डिजाइन बिगड़ी, धुंधली सी रहेगी। उससे किसी को सन्तोष न होगा। आज भी निराश जनता कभी-कभी कह बैठती है कि इससे तो अच्छी अंग्रेजी सल्तनत थी। आपने भी ऐसे उद्‌गार सुने होंगे। आपने यह किस्सा भी सुना होगा कि यदि विक्रमादित्य की गद्दी पर क्षणभर बालक या चरवाहे बैठ जाते थे तो वे ज्ञानी बन जाते थे। शैतानी गद्दी पर यदि महात्मा बैठ जाए तो वह भी शैतान बन जाता है। यदि इसी गद्दी के तरीके को कायम करना है तो चाहे जवाहर बैठे या जयप्रकाश, जोशी या विनोबा भावे बैठें परिणाम में थोड़े ही फरक आनेवाला है। मनुष्य नहीं पद्धति ही प्रभावकारी होती है। यह सीधी-सादी बात अब तो हमारे ध्यान में आ जानी चाहिए। अतः हमें इस केन्द्रीय शैतानी पद्धति को बदलना होगा। स्वावलम्बी, स्वपूर्ति, विकेन्द्रित तरीका अपनाना होगा। गद्दी पर नेहरू-भावे बैठने से काम न होगा। आज अधिकार, पक्ष नीति का युग नहीं है। केवल दखल करने का समय नहीं है। आज दबोच नीति या हावी होने की नीति का युग है। दमन के नीचे रह कर कोई उसपर हावी नहीं हो सकता। यंत्र के सिकंजे में फंसा हुआ उसे बदल नहीं सकता। गद्दी के नीचे जनता को रखकर जनतंत्र कायम नहीं किया जा सकता। विदेशी शासक गद्दी पर कसकर बेरहमी से बैठते थे। हमारे नेता रहमदिल रहेंगे। मगर जनता तो दोनो हालतों में दबी ही रह जायगी। आपका कर्तव्य है कि आप जनता को गद्दी के नीचे से निकालें। अर्थात विकेन्द्रित तरीकों को चलाने के लिये हमें गद्दीनशीन को ढकेलना नहीं है, बल्कि जनता को गद्दी पर हावी बनाना है। क्यों कि यदि गद्दीपर जनता हावी रहे तो देश में होगा जन-तंत्र और यदि गद्दी-नशीन हावी रहेगा तो मुल्क में फैलेगा अधिनायक तंत्र। यही काम चर्खा संघ करना चाहता है और प्रत्येक को आव्हान देता है कि वह हमारा साथ दे और इस शान्तिमय क्रान्ति को सफल बनावे। युवकों का खयाल होता है कि क्रान्ति कभी शान्तिमय हो ही नहीं सकती। यह कथन गलत है। हिन्सा क्रान्ति की विफलता का नतीजा है। जब अपनी

इच्छानुसार शान्ति के साथ काम नहीं होता तो मनुष्य ऊबकर या चिढ़ कर हिंसा का सहारा लेता है। हमें गद्दीदार को निकाल फेंकना नहीं बल्कि गद्दी को ही निकाल देना है, ताकि गद्दी-नशीन की जरूरत ही न पड़े।

आज छोटा सा बच्चा भी कह देगा कि शोषण नहीं होना चाहिए। और हम सब महसूस करते हैं कि पूंजीवादी केन्द्रीय तरीकों से शोषण होता है। शोषण दो तरीकों से होता है। एक आत्मा का और दूसरा शरीर का। आजादी छीन कर आत्मा का और सम्पत्ति छीन कर शरीर का शोषण किया जाता है। इसलिए वह प्रणाली खत्म करनी होगी, जो आजादी या सम्पत्ति छीन सकती है। राज शासन मुख्यत: नियंत्रण के लिए ही है। अर्थात जितना शासन का दायरा बढ़ेगा उतनी ही व्यक्ति-समाज की आजादी घटेगी। इसलिए स्टेटलेस, शासनहीन प्रणाली लानी होगी। शासन-हीन समाज-व्यवस्था की ओर ही बढ़ना होगा। उसी तरह शोषण-हीन अर्थरचना भी अमल में लानी होगी। आज तीन वर्ग हैं—एक रईस, (सेठ, सामन्त, महन्त) दूसरा मध्यम (बाबू, सफेद-पोश, बुद्धिजीवी) तीसरा श्रमिक किसान मजदूर। पहले दो शोषक हैं। वे जब तक हैं शोषण रहेगा। केवल तीसरा ही उत्पादक वर्ग है। अत: पहिले दो वर्गों को मिटाने से एक ही उत्पादक वर्ग रह जायगा। यानी समाज वर्गहीन और इसलिए शोषणहीन हो जायगा।

पश्चिम समाज को वर्गहीन, शोषणहीन बनाने की बात मानता है। उसी प्रकार शासनहीन आदर्श भी मानता है। फिर वह केन्द्रित पद्धति और शासन को दृढ़तर करता जा रहा है। वे कहते हैं शासन को इतना मजबूत बनाओ कि अन्तिम समय में पूर्णता पाकर वह अपने आप मिट जावेगा या पूर्णत्व के बाद पंचत्व के दर्शनिक सिद्धांत पर उनका विश्वास है। वे उसे आजमाना चाहते हैं। हमें अन्त में क्या होगा इसकी दिलचस्पी नहीं। क्योंकि तब तो अन्त ही हो जायगा। हमें मोक्ष से दिलचस्पी नहीं। हम चाहते हैं कि आत्मा प्रगति करती चले। हमें दिलचस्पी है राह पर कदम-कदम बढ़ाए जाने में। शासन को घटाना या मिटाना होगा उसके कार्य और प्रक्रियाओं को कम

करते जाना होगा। शासन के प्रमुख कार्य हैं पूर्ति, प्रबन्ध, रक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य। इन कार्यों में जनता जितनी आत्म-निर्भर होती जावेगी, शासन का मुँह ताकना छोड़कर स्वयं अपनी स्फूर्ति और परिश्रम से संगठन कर लेगी। कोरे शासन के दायरे घट जावेंगे, और घटते घटते एक दिन शासन नगण्य हो जायगा। साथ ही इस प्रक्रिया में जनता की आजादी बढ़ती जावेगी। क्योंकि उपर्युक्त कार्य ही जनता की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। जमाना किसी की राह नहीं देखता। वह किसी के लिए नहीं रुकता। जो जमाने का साथ न देगा उसका तक़ाजा पूरा न होगा। वह पिछड़ जायगा। इसलिए हमें जैसे वेद वचनों के प्रमाण पर रहना नहीं है उसी प्रकार १८४८ के काल मार्क्स के वचनों के प्रमाण को भी आज छोड़ना होगा। हर बात अपने उसी काल में उपयुक्त होती है। परिस्थिति के बदलने के साथ उनपर उसी प्रकार विचार करना चाहिए। आज हम १०० वर्ष आगे हैं। १९४८ में हैं। उस समय की समस्या पूंजीवाद के आतंक की थी, आज अधिनायक तंत्र के आतंक का सवाल है। चाहे वह फैसिस्ट तरीके का हो चाहे कम्युनिस्ट तरीके का। यह बात हमारे आधुनिक महर्षि द्रष्टा राष्ट्रपिता बापू ने देख ली थी। इसलिए वे चर्खा, चूल्हा, चक्की, हल, बैल, गाय, ग्राम रक्षा दल, पंचायत, सेवा समिति, सहकारी उत्पादन समिति, बुनियादी तालीम, निसर्गोपचार, समभाव आदि को अपनाने पर जोर देते थे। उनका अपना वह सत्य-अहिंसा का साधन-शुद्धि का तरीका था। पश्चिमी दार्शनिक और गान्धीजी में यही तो फर्क है। रईस और बाबूवर्ग को मिटाना ही है। केवल एक उत्पादक वर्ग ही रहेगा इसके लिये गान्धीजी इनका शुद्धिकरण, उत्पादक के साथ इन्हें मिलाकर अहिंसा के जरिए से चाहते थे। पश्चिम उसीके विनाश को या निकाल फेकने को हिंसक तरीके से चाहता है। विज्ञान कहता है कि किसी चीज का नाश नहीं होता केवल रूप-परिवर्तन होता है, और क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। इसीलिए पश्चिम के हिंसक तरीकों से प्रतिहिंसा होगी। रईस और बाबू मिटेंगे नहीं, वह दल अधिनायक या प्रबन्धक वर्ग के रूप में परिणत होगा। पहिले उसका नग्न स्वरूप स्पष्ट दिखता था। वर्गगत या व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण

वह उत्पादक से अलाहिदा किया जा सकता था। उसके खिलाफ संगठन हो सकता था। अब वह प्रच्छन्न रूप से रहने के कारण और अधिक भयानक शोषक होगा। क्योंकि वह जनता के नाम पर सब कुछ करेगा और जनता इस कारण उसके सिकंजे में जकड़ी जावेगी। और वह उसपर हावी न हो सकेगी।

गान्धीजी का तरीका शोषक वर्ग के दिल को विवेक से छेड़ता है। उससे विनय करता है कि वे स्वयं ही उत्पादक किसान-मजदूर बन जावे और भारत के ७ लाख गावों में बस जावें। युवकों का यह काम है। गान्धीजी को यह मालूम था कि कोई एकदम परिवर्तित नहीं हो सकता। पर उस ओर बढ तो सकता है। रईस बाबू वर्ग की संस्कारगत कमजोरिया है। उन्हें एकदम एक पीढ़ी में उत्पादक होना आसान नहीं है। वे न तो नर रहेंगे और न सिंह बनने पावेंगे। उनका नरसिंह अवतार बन सकेगा जो केन्द्रिय पूंजीवाद के हिरण्याक्ष (सोने की माया) को खतम कर अपनी भावी पीढ़ी प्रहलाद पर छोड़ेगा।

गान्धीजी चरखा चलाकर कम से कम जब दो पैसे का सूत कातने की बात कहते थे या बुम्बई वालों को गमलों में तरकारी पैदा करने को कहते थे तब वे पूर्ण रूप से जानते थे कि इससे वस्त्र-अन्न की समस्या हल होने वाली नहीं। वे पागल नहीं थे। वे तो बाबू-रईसों को उस ओर जाने का रास्ता दिखलाते थे। उत्पादक में घुलमिल जाने की ओर प्रगति करने के लिए वे चाहते थे कि शोषकवर्ग समाज की उत्पादन की प्रक्रियाओं में शामिल होकर उत्पादक वर्ग के साथ एकात्म्य स्थापित करे। चाहे वह लाक्षणिक क्यों न हो। वस्तुत: यदि समाज को शोषणहीन बनाना है तो समाज में रईस और बाबू वर्ग को मरना है। जमाने की अदालत में उनके खिलाफ डिग्री हो गई है, अब प्रश्न यह है कि वे अपने को किस तरह खतम करना चाहते हैं। गान्धीजी के तरीके से अगर वे अपने को उत्पादक वर्ग से मिला नहीं देते हैं तो स्टालिन के तरीके से उत्पादक द्वारा उन्हें विनष्ट होना पडेगा। वे दो में

एक रास्ता चुन लें। कुछ लोग कहते हैं कि हम उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण कर डालेंगे। पर तरीका यदि केन्द्रित रहनेवाला हो तो फिर उत्पादक के अधिनायकत्व के नाम पर दल-आधिपत्य एक-न-एक दिन होगा ही। तब प्रबन्धक वर्ग का निर्माण अवश्यंभावी है। क्यों कि बड़े-बड़े यंत्र जटिल होते हैं। और स्टेट प्लानिंग द्वारा होनेवाला सार्वदेशिक आन्दोलन सामान्य जनता की समझ के परे होने से उनपर जनता का अधिकार न रह सकेगा। तब जनता के चुनिन्दों के आदेशानुसार चलना ही होगा। फिर जनतंत्र गायब हो जायगा। स्टालिन जैसा सर्वेसर्वा उसका लाजिमी तर्क-पूर्ण नतीजा है। तो फिर जो लोग पूंजीपति तक से छुटकारा पाने के लिए केवल केन्द्रीय यंत्र का राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं वे भूल जाते हैं कि यदि केन्द्र पूंजीपति के हाथों में हो तो राज्य होगा नौकरशाही का।

यह एक महान क्रान्ति है। इसके लिए त्याग भी उतना ही अधिक करना होगा। १९२१ में गान्धी के आव्हान पर लोग लन्दन की गद्दी उखाड़ने के लिए आगे आए। उसमें वे अंग्रेजों से मदद की अपेक्षा कैसे कर सकते थे? अंग्रेजों के विरोध के बावजूद उस समय के नवजवानों ने सफलता प्राप्त की। आपको स्वराज दिलाया। उन्होंने गद्दी लंदन से उठाकर दिल्ली-नागपुर में जमा दी। एक पीढ़ी दो क्रान्तियाँ नहीं कर सकती। अपवाद रूप भले ही कुछ लोग जिनमें जान-जीवन है, जो प्रगतिशील विकास-क्षम हैं वे आपमें शामिल हो सकेंगे, जैसा कि हर जमाने में होता आया है। पर अधिकांश लोग तो मिली हुई चीज का संगठन करने में, उसे मांगने में, खरोंचने बांटने में मशगूल होंगे। अतः १९४८ की क्रान्ति के लिए नयी दूसरी पीढ़ी आपके सामने आवेगी। दिल्ली और नागपुर की गद्दी घर-घर, गांव-गाव पहुँचाना आपकी राय है। आज की पीढी आपको मदद न देगी। संभव है वह शायद विरोधी भी हो। अतः आपको शहीद बनना होगा। पहिले भी लोगों ने लाठी खायी, गोली सही, बर्बादी सही, उम्र बितायी और मरकर वे शहीद हुए। आपको अब मरकर नहीं, जिन्दा शहीद बनना होगा। जिन्दगी के मौजूदा तरीकों का त्याग करना होगा। गांव-गांव में बसकर किसान

मजदूरों में अपने आपको मिलाना होगा, रहन-सहन, निजी सब बातों में आमूल परिवर्तन करना होगा। पहिले के युवक गान्धीजी के पीछे चल पड़े। आज बापू तो नहीं हैं, अतः उनकी वाणी के पीछे हमें चलना होगा। यह कैसे हो? ठीक उसी प्रकार जैसे '२१ में हुआ था। बापू ने देखा कि जनशक्ति बढाने के लिए जनता से जिनका सम्पर्क है उस बाबूवर्ग का नेतृत्व कायम करना होगा। रईस जन-सम्पर्क में नहीं आ सकते। अतः मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास जैसे देशभक्तों ने रईसी छोडी। वे बाबूवर्ग में आ मिले और बाबूनेतृत्व कायम किए। जैसे दही का कुछ अंश दही से अलग हो कर दूध में मिलकर सारे दूध को जमा देता है उसी तरह अब आपको अपना बाबूपन छोड़ कर उत्पादक बन कर किसान-मजदूर-नेतृत्व जमा देना होगा। सन '२४ में चौरी-चौरा कांड के बाद निराशा फैल गई थी। नेता शासनतंत्र की ओर निगाह फेरने लगे थे। तब जेल से निकलने के बाद बापू ने जनसंगठन के हेतु एक रचनात्मक योजना रखी और चरखा संघ ने जन्म लिया। बेहोश जनता उस समय सरकार को मांबाप कहती थी। उसे होश दिलाया। रचनात्मक कार्य ने देश में शक्ति का संचय और संवर्द्धन किया। आत्मविश्वास बढ़ाया, जान फूंकी। आज '४८ में वही निराशा नजर आ रही है। क्या नेता और जनता सभी लोग सरकार की ओर टकटकी लगाए बैठे हैं। अतः तीन वर्ष के बाद क्यों न हो, पर बापू के नए पथ पर चलने की दृष्टि से चरखा संघ पुरानें तरीके की तब्दीली कर स्वावलम्बन के आधार पर विकेन्द्रित प्रणाली द्वारा स्वायत्त ग्रामीण रचना करना चाहता है। वह उत्पादक वर्ग के नेतृत्व की ओर बढ रहा है। अपने को उत्पादक में मिलाना चाहता है। आज का बाबूवर्ग केवल आपस में ही नेतृत्व की तबदीली चाहता है। उसके सम्बन्ध से दक्षिण और वाम दो दल बन गये हैं। दोनों एक दूसरे को गलत और अपने को सही बतलाते हैं और जनता को अपने पीछे चलने को कहते हैं। इस तरह नेतृत्व चाहे दक्षिण चाहे वाम पक्ष का हो वह कदापि जनता का न होगा। जनता हमेशा किसी न किसी के पीछे रहेगी। इस स्थिति में किसी

की दुम से लटक कर जनता को स्वर्ग न मिलेगा। अैसे जनतांत्रिक विरोधी दल बनाकर ध्येय प्राप्त होना असंभव है। क्यों कि विरोधी दल का खयाल हमेशा गद्दी पर लगा रहता है। वह अपने आदमियों का ही खयाल रखता है। वह जनता का असली संगठन कभी न करेगा। क्रान्ति की बात तो दूर रही, गद्दीपर गृद्धदृष्टि लगाना छोड़ कर जो त्याग और सेवा के लिए तैयार होगा वही जननेतृत्व कायम कर सकेगा।

कॉंग्रेस कार्यकर्ताओं से

साथियो,

आप सोचते होंगे कि हमारे अर्थात् कांग्रेस के प्रयत्न से अथवा आन्दोलन के कारण से अंग्रेज यहां से जा रहे हैं। इसमें आंशिक सत्य तो है मगर पूरी बात यही नहीं है। अंग्रेजों ने केवल भारत को ही नहीं छोडा है, उन्होंने फिलिस्तीन भी छोडा है। ब्रह्मदेश को तो बिना आन्दोलन के ही छोडने को तैयार हुए। आप को शंका हो सकती है कि जापानी आक्रमण के कारण ब्रह्मदेश की स्थिति अलग हो गयी थी। फिर सिलोन के बारे में आप क्या कहेंगे? वहां तो अंग्रेजों के खिलाफ कभी विरोधी लड़ाई भी नहीं की गयी। फिर सिलोन भी आजाद करके अंग्रेज वहां से चले गए। अंग्रेजों ने अधीनस्थ देश में राज्य करना इसलिए स्वीकार नहीं किया कि आज इस प्रकार उन्हें परता नहीं पड़ता। उन्होंने अब दूसरा रूप धारण कर लिया है। बर्नार्ड शा अपनी एक व्यंगोक्ति में कहते हैं कि अंग्रेज भलाबुरा जो कुछ करते हैं वह आदर्श के लिए करते हैं। उन्होंने गुलाम प्रथा बन्द करने का नारा लगाया था इसलिए कि यन्त्रउद्योग पनप चुका था। यंत्रों के जरिए एक मनुष्य अनेकों के बराबर काम करता था। अतः पुराने तरीकों के अनुसार उनके सारे परिवार के पालन-पोषण की जरूरत नहीं थी। बेकारी के समय उन्हें खिलाना भी कठिन था। दूसरों से प्रतियोगिता करनी थी। अतः परिवार की अपेक्षा व्यक्ति को रख कर खर्च घटाना आवश्यक हो गया था। मजदूर और उसके परिवार की परवरिश की चिन्ता करनी पडती थी। उससे मुक्ति पाने के लिए गुलाम प्रथा उठाना आवश्यक था। हटाने में ही परता पड़ता था। इसलिए गुलाम प्रथा हटाने का नारा लगाया गया, जब आजाद मजदूर सस्ता पडता था और गुलाम महँगा। कहते हैं कि हम देशभर इसलिए कब्जा किए थे कि हमें सभ्य बनाना था। और आज छोड़ रहे हैं इसलिए कि हमें आजादी सिखलानी है।

आज परता देख कर ही अंग्रेज भारत की गद्दी छोड रहे हैं। आदमी की आहट सुनकर ही बन्दर जिस प्रकार मैदान छोडकर डाल की शरण लेता है, पर मौका पाकर वह फिर कूद पडता हैं, उसी प्रकार अंग्रेज भी कर सकते हैं। वे हार गए या हम जीत गए इसका निर्णय अभी नहीं हुआ है। युद्ध में बहुत बार जीत-हार हो जाती है। हमने देखा है कि आरम्भ में जीतनेवाले नेपोलियन, हिटलर, तोजो अन्त में हार गए। अन्त की विजय ही विजय है। आज इतना ही कह सकते हैं कि हमने अंग्रेजों को काफी पीछे हटा दिया है। वे पूरी तरह से अभी पराजित नहीं हुए हैं। '४२ में उन्होने हमला किया था। तब भारतीय राष्ट्रीयता दबी सी थी। किन्तु '४५ में जब नेता गण बाहर आये तो यह राष्ट्रीयता उत्कट रूप में उग्र हो उठी। अंग्रेज केवल बनिया नहीं हैं। वे पूर्ण मनोवैज्ञानिक भी हैं। उन्होंने देखा कि भारतीय मनोवृत्ति केन्द्रीय उद्योग वाद का रास्ता अख्तियार करने वाली है, न कि चरखे का। तब उन्हें लाचार होकर देशी पूंजीपति और उनके द्वारा अंग्रेजी पूंजीपूतियों की शरण लेनी होगी।

केन्द्रीय पद्धति हमेशा सिरमारी होती है। उसका सारा काम निरक्षकों के जरिए होता है। ये मध्यस्थ सफेद हाथी होते हैं, जो रास्ता चलते खुराक के अतिरिक्त इर्द-गिर्द की फसलों को नोचते जाते हैं। साथ ही वर्ग-श्रेणी को बनाए रखते हैं। आज जिस प्रकार हमने अंग्रेजों को विलायत भेजा उसी प्रकार इन इन्तजाम करनेवालों को भी दिल्ली लौटाना होगा। जनता को स्वयं स्फूर्ति, स्वतः प्रेरणा से नेतृत्व हाथ में लेना होगा। साम्राज्य वादी मोर्चे से बचना होगा, तो शासन भी विकेन्द्रित करना होगा। इसके लिए विकेन्द्रित ग्रामोद्योग अपनाना होगा। और विकेन्द्रित ग्रामोद्योग का चरखा केन्द्र बिन्दु होगा। क्यों कि आज की महत्वपूर्ण पर आसानी से सबके संगठन से हल होने वाली समस्या कपडे की है।

गान्धीजी हमेशा चर्खे के जरिए सामयिक समस्या के हल करने में लग जाते थे। जब तक सामयिक समस्या का हल नहीं तब तक उसमें

जीवन नहीं। देश में काँग्रेस से सैकड़ों गुना रचनात्मक काम चल रहा है मगर उसका महत्व नहीं। वही अन्तर आज के और पुराने चर्खे में है। वस्तुतः आपको आज के चरखे में कुछ महत्व है यह मान कर ही काम करना है। यदि आप मानते हैं कि चरखा पुरानी चीज है, आज के जमाने के लिए निकम्मी है और आगे के प्रगति-चक्र को उलटने वाली है तो हिम्मत के साथ उसे जला डालिए, और खादी पहनना छोड़कर जिस उद्योगीकरण के आप हामी हैं उसके द्वारा उत्पादित मिल का कपड़ा पहनना शुरू कीजिए। लेकिन यदि आप खादी पहनते है, चर्खे की बाते करते हैं तो उसके हर पहलू को आपको समझना होगा। ऐसा समझने के लिए पहिले आपको चर्खा आन्दोलन के इतिहास पर नजर डालनी होगी।

सन् १९२१ में जनता को अंग्रेजी सरकार का सेनानी स्वरूप दिखलाना था। उनका शोषण बन्द करना था। विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करना था। मिल मालिकों पर हम विश्वास नहीं कर सकते थे। उनसे धोके का भय था। अतः जनता को आत्म निर्भर करना था। संगठित करना था। लूले, लंगडे, अनाथ, आपद्ग्रस्त, विधवा, त्यक्ता, बूढ़े, बच्चे सबको राहत देनी थी। बेकारी दूर करनी थी। जनजाग्रति के लिए जनसम्पर्क की आवश्यकता थी। यह काम चर्खा संघ ने किया।

सन् १९३२ में जागतिक मंदी आयी। बेकारी के अतिरिक्त शोषण बन्द करने का सवाल खड़ा हुआ। तब गान्धीजी ने जीवन-यापन के सिद्धान्त को अपनाया। आठ आने रोजाने की बात रखी। नेता लोग दूर गए। वे कहने लगे कि खादी महंगी होगी। वह न चलेगी। गान्धीजी अपनी बात पर अड़े रहे। आखिर महंगी खादी जीवन-वेतन का सवाल लेकर भी बढ़ी। जब ट्रेडयूनियन मजदूरी बढ़ाने का केवल आन्दोलन भी नहीं करते थे, तब चर्खा संघ ने आठ आने नहीं तो भी खेती के मजदूरों जितनी तीन आना रोजाना मजदूरी निर्धारित की।

सन् '४७ में विदेशी राज गया, स्वदेशी हुआ। अब स्वदेशी राज के स्थान पर हमें जनराज—स्वराज स्थापन करना है। जनता के हाथ में असली अधिकार देने हैं। अभी जनता को केवल मतदान का अधिकार मिला है। जब तक जनता के हाथ में पहल नहीं, तब तक उनकी शक्ति सुप्त-बेहोश रहेगी। जनता यदि आवश्यकता की पूर्ति की समस्या स्वयं हल करना सीख ले तो उसका होश स्थायी होगा। तब नित्य का जीवन-संग्राम वह खुद चला लेगी। तब बची हुई समस्या के लिए मतदान भी होगा तो वह संभल कर देगी। और तभी सच्चा लोकतंत्र होगा। नहीं तो बेहोश जनता के 'वोट' से शुद्ध भीड़-तंत्र बनेगा।

चरखा संघ के प्रारम्भ में लोगों की धारणा थी कि गान्धी शहरियों को गंवार जंगली देहाती बनाना चाहता है। क्योंकि उससे कला का विनाश होगा। तभी उनको यह भी शंका थी कि उसमें केवल दो पैसे रोजाना मिलते हैं। लेकिन उस समय दो पैसे की कीमत थी, क्योंकि सालाना औसत आय १८) रुपये थी। चरखे ने अन्धे को लकड़ी दी, बेकार को रोटी दी, विधवा को सहारा दिया। चरखे से महीन कपडा निकला, डिजाइनदार निकला, सस्ता निकला और काफी तादाद में निकला। इससे भी बडी बात चरखे ने की। उसने गरीबी-अमीरी का भेद मिटाया। गरीबों के साथ आत्मीयता स्थापित की। जन सम्पर्क द्वारा स्वाभिमान, जागरण, संगठन उत्पन्न किया। विलायती माल के बहिष्कार को सम्भव बनाया।

अब बेकारी की समस्या नहीं है। अब एक नयी समाज-व्यवस्था कायम करनी है। चरखे को सत्य-अहिंसा का प्रतीक बनाना है। यह स्वावलम्बी खादी का समय है। देश के सामने शोषन-हीन और शासन-हीन समाज बनाने का तरीका रखना है। उसकी नींव डालनी है। उसके लिए ठोस संगठन की जरूरत है। अतः बापू ने नया नियम बनाया कि वही 'आदमी खादी पहने जो काते, काते तो समज बूझकर कातें।' अर्थात उसके पीछे निहित प्रचलित समाज व्यवस्था को बदलकर आर्थिक और समाजिक क्रान्ति के आदर्श को समझ कर स्वीकार करे। अतः सूत-शर्त लगायी गयी। पर हमने उस ओर मुस्तैदी न

दिखायी। लोगों ने कहाँ से सूत लाए इसका खयाल न किया। बापू के समय ग्राम-सेवा की आवाज पर भी हमने ध्यान न दिया। पिता के रहते हम बे-फिक्र थे। हमने भयावनी हालत को न समझा। अब हमारी आखें खुलीं। हम चेत गए। आज इतिहास के पन्ने चित्रपट जैसे जल्दी-जल्दी उलटने लगे हैं। कहीं जाइए, लोग यही चर्चा करते हैं कि आवश्यकता-पूर्ति नहीं हो रही है। काला बाजार, रिश्वतखोरी बढ़ने लगी है। अब कैसे होगा। सब आत्म-विश्वास खो बैठे हैं। ऐसी ही स्थिति में तानाशाही को जन्म मिलता है। जब जनता अपने पर भरोसा छोड़ देती है तो वह निराश होकर किसी शक्ति-शाली अधिनायक की गोद में चली जाती है। ऐसी स्थीति ने हिटलर और मुसोलिनी को पैदा किया था। अंग्रेजी पूंजी देशी पूंजीपतियों के जरिए यहाँ पहुँचकर हमारे समूचे जीवन पर हावी होने का भय है। अतः चरखा संघ को ही नहीं; आपको भी स्वावलंबन के आधार पर जन शक्ति संगठित करना है या मर मिटना है।

आप सोचते हैं कि मंत्रीगण जबरदस्त कार्यवाही को नहीं करते। क्या करेंगे वे? आप ने रिश्वतखोरी विरोधी महकमे का रवैया देखा। अब तो एक जगह दो भूत हो गए है। वे एक से एक बढ़े-चढ़े हैं। पुरानी प्रणाली से आप क्या आशा रखोगे? केवल सुधार से अब काम न चलेगा। सारा वातावरण ही गंदा हो गया है। सड़ रहा है। अतः आमूल परिवर्तन करना होगा। विकेन्द्रित स्वावलम्बी तरीके पर गान्धीजी के पीछे चलना होगा। पर विकेन्द्रित हो, वितरित नहीं। वितरण ऊपर से–केन्द्र से होता है। उसमें जान नहीं। सदाव्रत के अन्न से मानव स्वाभिमानी नहीं बनेगा। न उसकी अन्न समस्या हल होगी। हमें शक्ति का वितरण नहीं उत्पादन करना है। उत्पादन के लिए सहयोग-समिति संगठित करके समाज को स्वायत्त और स्वावलम्बी बनाना है। यहाँ नमक-तेल बांटनेवाली पूंजीपतियों के दलाल को-आपरेटिव से मतलब नहीं, वह तो वितरित शक्ति का नमूना है। काँग्रेस का ध्येय को-आपरेटिव कामनवेल्थ है। सहयोगी महासंघ एकमात्र शक्ति-साधन है। ऊपर से नहीं नींव से ग्राम,

हल्का, मंडल, तहसील, जिला, प्रान्त और देश, फिर अन्तर्राष्ट्रीय महासंघ बनाना है। यह कार्य न तो सोशालिस्ट रिपब्लिक से न कैम्युनिस्ट रिपब्लिक से होता है। कम्यूनिज्म की तो बात ही नहीं करनी है। पर हम देख रहे हैं कि काँग्रेस के उस सिद्धान्त को स्वयं अधिकांश काँग्रेसजन भी नहीं जानते हैं। यदि जानते हैं तो इनमें से बहुत कम ही उसे असली मानी में समझ पाते हैं। समझने वाले उस दिशा में कदम नहीं उठा रहे हैं। यह अफसोस की बात है कि लोग कहते हैं कि हमें फुर्सत नहीं। अपने छोटे बड़े निजी कामों के लिए उन्हें फुर्सत है। नेतागिरी, दौरे, व्याख्यानबाजी, चुनाव, पदप्राप्ति सबके लिए, और तो क्या सिनेमा जाने के लिये, गप्पों के लिए समय है। पर जो मुख्य ध्येय है उसे अमल में लाने की फुर्सत नहीं। पर उन्हें क्यों दोष दिया जाय। एक प्रकार से यह स्वाभाविक है। एक लड़ाई जीतने के बाद वे 'होम सिक' हो गए हैं, आराम चाहते हैं। मिले हुए यश को उपभोग कर रहे हैं। इनसे आशा करना व्यर्थ है। क्यों कर वे आपको अपने त्याग-तपस्या का फल दें ? उन्होंने अपने लिए पाया है, न कि आपके लिए। यह बात दूसरी कि वह उसके भोग द्वारा अपना तप-बल समाप्त कर रहे हैं। अब तो नयी पीढी को आगे आना है। जितने कार्यकर्ता हमारे पास होंगे उतनी ही शीघ्रता से हमारा नया समाज स्थापित होगा। आपको ग्रामों में जनता के बीच उत्पादक बनकर बैठना है। जनता को बुद्धि देकर नेतृत्व के योग्य बनाना है। और हमें हाथ-पैर सुदृढ़ बना कर स्वावलम्बी होना है। गौण आवश्यकताओं के लिए चाहे केन्द्र रहे, पर मौलिक जरूरतें तो हमें ही पूरी करनी हैं। इस क्रान्ति के लिए हमें योग देना होगा। स्वभावतः अधिकांश लोग 'कौडिया' पसन्द करेंगे। वे चालू काम चलाते रहें। हम उनकी भी व्यवस्था कर लेंगे। जनता द्वारा क्रान्ति चाहने वाले जनता में ही घुल-मिल जाएं। अपने योग्य क्षेत्र की परवाह न कर वह काम ईश्वर अर्थात् जनगण-मन पर छोड़ कर उसके नित्य तृप्त, निराश्रय भक्त बन जाएं। जनता-जनार्दन उनकी उपेक्षा न करेगा। वह उन नित्याभियुक्तों का योग-क्षेम चलायेगा। हम फिक्र न करें, चाहे जो हो। वही हमारी कसौटी होगी। यह केन्द्र के या नेताओं के भरोसे होनेवाला नहीं है।

साथ ही यदि जनता नेताओं का साथ न दे तो वे भी न टिकेंगे। निराशा छोड़ जनता में आत्म विश्वास पैदा करना है। नेतृत्व यदि सख्त जमीन पर न हो तो दल-दल में फंस जायगा। लेनिन को घपला संभालने में बारह वर्ष लग गए। जनता में आत्मविश्वास न हो और नेता घपला संभाल न सकें तो जनता घबरा कर अधिनायक तंत्र के हाथ बागडोर सौंप देगी। हम इस बात को रोकने का कदम उठावें या मिट जावें। आप संख्या की परवा न करो, सही कदम रखो। कितना उत्पादन बढ़ाया जाए महत्व का नहीं, जबतक कि जनता में आत्म विश्वास पैदा न हो जाए। अतः धैर्य ही मुख्य है। उसीको कायम रखना है। जीवन संग्राम के लिए हमें स्वावलम्बी होना है। केवल कपड़े की बाबत में नहीं। उसे केन्द्र मानकर समयानुसार काम करना है। खेती प्रमुख है। उसमें सुधार करना है। जनता को स्वायत्त बनाना है। गद्दी का भार हटाना है। स्वावलम्बी ही निर्भय होगा। वही स्वायत्त बनेगा। कार्यकर्ता उस ओर बढ़ें। बाबूगिरी कम करते जावें। और श्रमिक यानी उत्पादक वर्ग में मिलने की ओर बढ़ें। आप पूछेंगे कि कपड़े की कमी के दिनो में हम उत्पत्ति छोड़ रहे हैं। क्या यह घातक न होगा? यह उत्पादन का काम हम बन्द नहीं कर सकते। क्यों कि पूर्ति की समस्या है ही। आगामी युद्ध के समय तो ज्यादा सतर्क रहना होगा। अतः चाहे वस्त्र स्वावलम्बन का काम हम अपने ऊपर लें, तो हम कांग्रेसियों को और खादीधारी मित्रों को सहयोगी सदस्य मानेंगे। उनपर यह काम छोड़ देंगें। सहायक फौज होगी वह हमारी। उत्पत्ति बिक्री का काम प्रयोग अवस्था से उठ कर तांत्रिक हो गया है। वह इन साथियों को देकर उन्हें साथ में रखते हुए अपने पथ की खोज करेंगे। खादीधारी कभी-कभी राष्ट्रीय सप्ताह, गान्धी जयन्ती आदि मौकों पर साथ देते थे। अब वे एक कदम और आगे बढ़ावें। संस्था बनावें। यह आसान काम ले लें। उसे केवल चलाते ही न रहें बल्कि बढ़ावें भी देश में ऐसी संस्थाओं का जाल बिछा दें।

आप सोचते होंगे कि जब पूर्ण विकेन्द्रीकरण न होगा तो भारत की स्थिति क्या होगी। भारत सरकार तो केन्द्रिय उद्योगों को बढ़ावा दे रही

है। यदि वे सफल हुए तो चर्खा संघ का क्या होगा। क्या भारत सरकार हमारे तरीकों का विरोध न करेगी ? जब कि वह उनकी नीति के खिलाफ़ है। उन्हें उखाडना चाहती है। बात तो यह है कि भारत सरकार विरोध करेगी ही नहीं, बल्कि सहायता देगी। चरखा संघ काँग्रेस की निर्मित संस्था है। वह काँग्रेस के रचनात्मक कार्य का ध्येय है और हमारी वर्तमान राष्ट्रीय सरकार का भी ध्येय यही है। इस कारण विरोध की तो बात ही नहीं है। हम तो सरकार की सहायता करके उसके हाथ मजबूत करना चाहते हैं। यदि औद्योगीकरण सफल हुआ ऐसा विवाद के लिए मान लें, तो उसका नतीजा जनशक्ति के विकास को रोकने वाला होगा। जनता उसे बरदाश्त करेगी। चाहो तो फिर जनतंत्र की बात छोड़ देनी होगी। और अगर केन्द्रवाद की पूर्ण सफलता हुई, जिसका होना आज की स्थिति में संभव नहीं, तो तानाशाही अवश्य होगी। पर जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, आदर्श तक कोई पहुँचता नहीं। पहुँचे तो आदर्श रह ही नहीं जायगा। अतः उस ओर बढ़ना है। रास्ता तय करते जाना है। तब विकेन्द्रिकरण चलेगा और कुछ अंशों में केन्द्रिकरण भी। इस संक्रमण काल में आपको इनका सामंजस्य स्थापित करना होगा। समन्वय सन्तुलन करना होगा। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ विकेन्द्रिकरण के तरीकों से पूर्ण की जावेंगी और जहाँ कार्य जनशक्ति के परे हों वहाँ यंत्रों के प्रयोग की इजाजत दी जावेगी। आज भी कुछ उद्योग प्रकृति ने केन्द्रित रखे हैं, जैसे कोयला, लोहा आदि। यंत्रोत्पत्ति भी केन्द्रित रहेगी। बिजली दोनों प्रकार से निर्माण हो सकेगी। हम जानते हैं कि जनता भी इतनी जिम्मेदार कहाँ है ? व्यक्ति या समूह कभी-कभी उच्छृंखल हो जाते हैं तब उनपर शासन का नियंत्रण चाहिए। और शासन जब असहयोग करे तो उसे बदलने की ताकत जनता में चाहिए। तभी शक्ति-सन्तुलन होकर सामंजस्य स्थापित होगा। जनता अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए शासन पर अवलम्बित रहकर उससे असहयोग करने की हिम्मत न कर सकेगी। अतः उसको शक्ति-शाली बनाने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि आवश्यकतायें पूरी करने के साधन उसी के हाथों में हों। बिजली द्वारा विकेन्द्रियकरण की बात कुछ लोग सोचते हैं। यह बुनियादी तौरपर गलत है। बिजली जिसके हाथ में होगी वह हुक्म दे सकेगा। यह

विकेन्द्रियकरण नहीं। वितरण हुआ। इसी तरह लोग आज के जनपद, ग्राम-पंचायतों, न्याय-पंचायतों के बारे में सोचते हैं। यह तो कानून से शक्ति वितरण करेगी, उसके हाथ में उसे वापस लेने की शक्ति होगी। यही बात 'होम गार्डस्' के बारे में। वे केन्द्रिय शक्ति के मातहत होंगे। इसी प्रकार दवाखाने और शिक्षा संस्थाओं भी सरकार के हाथ में रहेंगी। इसी लिए बापू कहते थे कि बुनियादी तालीम सिद्धान्ततः स्वावलम्बी रहे, ताकि उसके सूत्र जनता के हाथों में रहें। वही बात यान्त्रिक खेती या कृत्रिम खाद की है। अधिक अन्न उपजाने का यह तरीका उत्तेजक पेय पिलाकर चेतना लाने जैसा परिणाम में निसत्व करने वाला, जमीन के द्रव्यों को शीघ्र शोषणकर उसे अन्त में ऊसर बनाने वाला, प्रारंभ में लुभावना पर आखिर दिवाला निकालने वाला, केंद्रपर आश्रित तरीका होगा। इन तरीकों से देश का स्थायी भला होगा नहीं। हमने यह भी देखा कि हमारे सामने आन्तरिक घपले तथा बाहरी समस्याएं हैं। यदि आन्तरिक समस्याएं हम हल कर लें तो सरकारी शक्ति खर्च न होगी। वे निश्चिन्त हो कर हमारे सहयोग से बाहरी समस्याओं का मुकाबिला योग्यता-पूर्वक कर सकेंगे। क्या युग-पुरुष के कथनानुसार आप न चलेंगे? क्या युग समस्या भी आगे चलकर अमेरिका आदि से सीखेंगे, जब कि उन्हें पाश्चिमी तरीके की विफलता का प्रत्यक्ष अनुभव नए अणु-युद्ध के बाद होगा? राजनैतिक क्रान्ति हो चुकी है। सामाजिक, आर्थिक क्रान्ति बाकी है। यह न हो पाये तो राजनैतिक स्वतंत्रता भी चली जावेगी। मरने के दो दिन पहिले गान्धीजी हमें इसी प्रकार आग्रह कर गए हैं।

जमाना साथ न देनेवाले के लिए न रुकेगा। १९०७ में वह गोखले-फिरोजशाह के लिए न रुका। १९२१ में बैनर्जी-पाल के लिए न रुका। आज के लिए न रुकेगा। जमाने की मांग पूरी न करोगे तो आप पिछड़ जाओगे।

शिक्षकों से

आप शिक्षक हैं। आपको क्रियात्मक अनुभव के साथ शिक्षा दी जाती है। आपके और दूसरे कालेजों में यही मुख्य फर्क है। और अिसलिये आपसे मुझे विशेष दिलचस्पी है। आप भावी पीढ़ी के निर्माणकर्ता हैं। देश के भविष्य की बागडोर आपके हाथ में है। शिक्षा कैसी हो अिसमें आपको दिलचस्पी होगी। शिक्षा सबसे अधिक जरूरी चीज है। उसपर मुल्क के भविष्य का आधार है। जिस प्रकार आप मुल्क को निर्माण करना चाहते हो, आपने जिस रूप की कल्पना की हो, उसके अनुकूल शिक्षापद्धति बनाइए। बचपन में जिस प्रकार के संस्कार होंगे, उसी प्रकार निश्चित रूप से नागरिक बनेंगे। आज की शिक्षा की कोई भी नीति नहीं है। •तो बहाने की नीति है। प्रवाह के साथ वही बहेगा जो हल्का हो, निर्जीव हो, थका-हारा हुआ हो। चेतन चाहे कीड़ा-मकोड़ा क्यों न हो, प्रवाह को काटने का प्रयत्न करेगा।

आज की शिक्षा मेकाले द्वारा निर्धारित की गयी है। उसके उद्देश्य मेकाले के शब्दों में ही आप जानते हैं। हमारी सभ्यता, हमारा स्वाभिमान नष्ट कर अंग्रेजों के शासन में सहायता देने वाला; अंग्रेजी आदर्श को अपना कर उनका मुंह ताकने वाला; गुलाम, परावलम्बी बाबू वर्ग उन्हें निर्माण करना था, जो कि शिक्षा के बाद जीवन-कला के लिए निकम्मा साबित हो, जिसे कि अपने ही करोड़ों भाइयों से नफरत हो, तथा अंग्रेजों और उनके आचार विचारों से आत्मीयता हो। स्वंय दादाभाई नौरोजी से लेकर आज तक सभी ने कहा कि यह शिक्षा नामर्द बनाने वाली है। बदकिस्मती से इसी नामर्द बनाने वाली प्रणाली से आज की शिक्षा का विकास हो रहा है। हमारी समझ में नहीं आता कि जो चीज नामर्द बनाने वाली हो उसका तेजी से विस्तार करने से वह मर्दानगी कैसे लायेगी ! आपके सामने शिक्षा की समस्या है, वह कैसे हो यह सोचने की समस्या है।

पहिले समस्या थी सामन्त शाही की, पर उसे नाश किया फ्रान्स की राजक्रान्ति ने। फिर समस्या आयी पूंजीवाद की, उसे नाश करने का काम किया कार्ल मार्क्स ने। आज समस्या है अधीनायक तंत्र की, जो प्रजातंत्र का निर्दलन कर समाज पर सवार है। हमें दुनिया में जनतंत्र कायम करना है। मुल्क को जाति, वर्ग, शोषण से बचाना है। इस प्रकार की रूढिगत परिपाटी को खतम करना है, को समाज जो विश्रृंखल किए हो। अेक ही उत्पादक वर्ग को रखना है। अतः शिक्षा पद्धति अैसी चाहिए कि जिससे भविष्य में एक ही उत्पादक वर्ग रह जाए।

आज का नारा है अनिवार्य शिक्षा दिलाने का। पर वह कैसा लुभावना है? यदि बच्चे से फावडा चलाया जाय, चरखे से कतवाया जाय तो लोग चिल्लाते हैं कि यह तो कठिन परिश्रम हो जायगा? तो क्या केवल किताबों की पढ़ाई रखी जाए? उत्पादक को भी बाबू बनाया जाय। सारा उल्टा सोचा जा रहा है। नतीजा यही होगा कि उत्पादक खत्म होगा, जब सबसे ज्यादा जरूरत है उसी की। क्या आप सोचते हैं कि पन्द्रह वर्ष की उम्र तक किताबी पढ़ाई के बाद किसान का लड़का हाथ में बमूला पकड़ेगा या हल चलाऐगा? यदि जीवन के लिए उसे ऐसा करने को मजबूर होना पड़े तो बमूले से वह अपने पैर काटेगा, बैल चलाने जाएगा तो वह किसान का बच्चा विरुद्ध दिशा में ले जायगा। यह सोचने की बात है। काश्मीर-हैदराबाद से ज्यादा महत्व की बात है। शिक्षा उत्पादन की क्रिया के माध्यम से होनी चाहिए। न कि किताबों के। भाषा अपनी हो। चाहे वह मातृभाषा हो या राष्ट्रभाषा हो। भाषा द्वारा शिक्षा किताबी पढ़ाई के तरीके से ही मौजूं हो सकती है, मगर वह हमारे लिए बेकाम है। यदि हमें बुद्धि प्रधान वर्ग बनाना हो तो अनुवंश के सिद्धांत से लाभ क्यों न लिया जाय? तब वर्गहीन समाज रचना कहाँ? परिश्रम को अनिवार्य रूप से स्वीकारना हो तो हम बौद्धिक कसरत से श्रम-विभाजन करते हैं। हमारा बौद्धिक श्रम और दूसरे का शारीरिक श्रम यह कैसा विभाजन? क्या हमें भगवान ने हाथ पैर नहीं दिए है? और क्या उन्हें दिमाग नहीं मिला? खाना खाने का काम हमको

जा सकता। आम लोगों को एक ही शिक्षा देने की पद्धति से तो स्नातक पंडित तैयार हो सकेंगे न कि व्यक्तित्व लिए हुए ज्ञानी। हमारी गुरुकुल पद्धति बुनियादी पद्धति जैसी थी। क्यों कि हमारी सभ्यता ही ऐसी थी की एक व्यक्ति बैठ जाता था, फिर उसके इर्द-गिर्द जमीन, झोपड़ी, कुआं, मठ, पताका, शाला आदि स्थान खड़े हो जाते थे। संस्थाएं बनती थीं। पश्चिम में पहले कागज पर संस्था का आयोजन होता था। पैसा इकठ्ठा हो कर जमीन-इमारतें खड़ी होतीं और बाद में उन्हें चलाने के लिए संचालक और बालकों की खोज होती है, जो व्यक्ति-विकास को दबा कर मानव प्रगति को रोक सकता है। आज शिक्षक यूनियन बना रहे हैं, शिक्षा का सौदा कर रहे हैं। गुरु का वह परम पूज्य स्थान आज खत्म हो गया है। गुरु-शिष्य की आत्मीयता का रिश्ता आज खत्म हो गया है। गुरुओं की आज फाइलें बनती हैं। उनके तबादले किए जाते हैं। इसी लिए शिक्षण संस्था स्वतंत्र रहे, वह सरकार के हाथ में न हो, सरकार उसे मदद करे, पर उस पर नियंत्रण न रखे। वह मनोवैज्ञानिक तरीकों को तांत्रिक न बना डाले। इससे सतर्क रहना है। यदि आप अपनी गौरवमयी सभ्यता रखना चाहते हैं तो हमारी पद्धति को अपनाइए। नयी तालीम को स्वीकार कीजिये।

इसके लिए आपको आमूल परिवर्तन करना होगा। सारा ज्ञान, अनुभव और अनुभूति से देना होगा। शिक्षण जीवन से सम्बन्धित होगा, जीवन की प्रक्रियाओं का वह एक अविभाज्य अंग होगा। उसी में स्वाभाविक रीति से, स्वयं स्फूर्ति से जीवन विकसित होता जायगा। उससे बौद्धिक वर्ग का उत्पादक वर्ग से तादात्म्य होता जायगा। प्राचीन गुरुकुलों की यही पद्धति थी, जब विद्यार्थी घरेलू कामों द्वारा शिक्षा ग्रहण करता था। आज की शिक्षा प्रणाली में जीवन के दरवाजे बन्द किए जाते हैं। शिक्षा व्यवहार के साथ बढ़ती जाती है। आजकी शिक्षा की तरह नहीं कि उत्पादक का बालक भी बाबू बनाया जाता है। फिर अनिवार्य शिक्षा में जब सभी बाबू बनेंगे तो समाज एक अर्थ

में वर्ग हीन तो होगा, मगर सारे शोषक होंगे। फिर प्रश्न होता है कि उत्पादक कहाँ होगा। और जब उत्पादक नहीं होंगे तो शोषण किसका होगा। इसका अर्थ है कि उत्पादक के मिटते ही शोषक भी मिटेंगे। इसलिए किसान अपनी मरजी से बाबू नहीं बनना चाहता है, वह तो घर के काम में लगना चाहता है। वे जानते हैं कि उनका लड़का पढ़ लिख कर बेकार बाबू बनेगा। वह परिश्रम से नफरत करेगा। आखिर परमात्मा ने भी अपनी प्रकृति के अनुसार निर्माण किया है। फिर आप जैसे बाबू प्रकृति से बाबू प्रकृति वाले चेलागण निकलें तो क्या आश्चर्य ? आप अनिवार्य शिक्षा की शोर मचाएंगे और अपने जैसे बाबू पैदा करेंगे।

बच्चा हमेशा अपने माता-पिता, भाई-बहन तथा गुरुजनों से अनुकरण करके अनुभव प्राप्त करना चाहता है। उसे दूसरों के कहने पर चलने में एतराज होता है। वह आत्मनिर्भर रहना चाहता है। परिश्रम करना चाहता है। उसकी बुद्धि और निगाह तीक्ष्ण होती हैं। क्योंकि वह जीवन की यात्रा में, राह में, प्रवाह में फसना पसन्द करता है। उसे कभी-कभी चोट पहुँचती है। हाथ पैर को चटके लगते हैं। वह गिरता, रोता, चिल्लाता है। फिर भी वह दूसरों पर अवलम्बित रहना स्वीकार नहीं करता। पर जब हम उसे बार बार मना करते हैं, डांटते धमकाते हैं, रोकते हैं, भय दिखाते हैं, पीटते हैं, पर अत्यधिक लाड़-प्यार करके उनकी आदतें बिगाड़ देते हैं। उसे शान के नाम पर चालाकी सिखाते हैं। अपनी जरा सी तकलीफ टालने के लिये उसे असत्य सिखलाते हैं। अपना-पराया-पन व्यवहार में बरतते हैं। नौकरी के सुपुर्द कर आराम तलब बनाते हैं। तभी वह आहिस्ता-आहिस्ता बाबू बनता है। और जब शालाओं की चहारदीवारी में संसार से सम्बन्ध तोड़कर उसे ऊबने वाली परिस्थिति का गुलाम बनाते हैं तब वह निकम्मा होकर पराश्रयी, पंगु और अनिवार्य रूप से शोषक बनता है।

शरीर श्रम के बिना हमारी जीवन यात्रा ही क्या, हमारी बुद्धि सतेज न होगी। बुद्धि-जीवी को भी अनिवार्य रूप से स्वास्थ्य के लिये शरीर श्रम करना

चाहिए। फुटबॉल, टेनिस आदि खेलों से शरीर की उष्णता की इकाइयों की एक घण्टे में उतनी ही शक्ति खर्च होती है जितनी की मजदूरों की तीन घण्टे मे होती है। इन खेलों के श्रम में पैसे की, समय की बरबादी और उच्च नीचता का नग्न प्रदर्शन होता है। पर उत्पादन के नाम शून्य। उधर मजदूर श्रम से उत्पादन बढाता है। वह स्वास्थ्यकर तो है ही वैज्ञानिक भी है। वह वसुमती की–अपनी मां की गोद में रहता है। वह उससे कभी नफरत नहीं करता। उसका जीवन स्वाभाविक है। वह देश की समस्या हल करने में अपना श्रम और समय लगाता है। तिसपर भी वह दीन और हम प्रतिष्ठित। इसी लिए गान्धीजी हमसे कतवाना, खेती, गोपालन करवाना, सफाई रखवाना चाहते हैं। उत्पादक में शामिल होने के लिए यह उनकी कम से कम शर्त है। जैसा कि हिंदुधर्म में कहा है बकरे काटना हो सकता है पर अहिंसा के लिए कम से कम गाय तो बचाओ। गोमास चाहे मुफ्त मिले न लो, दूसरा चाहे कितना महंगा हो तो भी उसे ही लो। तभी अल्पतम अहिंसा का पालन कर हिन्दू रह सकोगे।

हम श्रम-विभाजन का नारा लगाते हैं। आजकल नारा लगाने का एक फैशन सा हो गया है। पहले हमने जनता को अफीम खिलाकर बेहोश रखा। आज नारा सुनाकर गुमराह कर रहे हैं। श्रम विभाजन का तत्व तो अच्छा है। मजदूर भी उसे स्वीकार करते हैं। पर वह शारीरिक, बौद्धिक इस प्रकार करना होगा। जिससे कि एक वर्ग को सदा के लिए मानवता से भी गिराया जाता है। यह धूर्तता, यह भेद-भाव अब न चलेंगे। पहिले आप किसान मजदूर बनो। फिर उनका नेतृत्व कायम करो। तभी आप बुद्धिजीवी, सच्चे परिश्रमी बनेंगे और उत्पादक बुद्धिमान हो पायेंगे। आपके कमजोर हाथ पैरों में शीलसंचार होगा, उसका दिमाग तेज होगा। दोनों परिपूर्ण हो एक हो जायंगे। संसार के सामने एक अहिंसक, स्वाभाविक, वैज्ञानिक मार्ग-रहेगा, जो सुख शान्ति की ओर ले जावेगा। उसके साधन भी शुद्ध होंगे। क्योंकि जैसे रास्ते का अन्तिम छोर मंजिलें मकसूद है, वैसे ही साधनों का अन्तिम छोर साध्य ध्येय-है। वह साधन से अभिन्न है।

हम मानते हैं कि यह एक आदर्श है जहां शायद ही कोई पहुंच पावेगा। हमारा ध्येय भूमिति के विन्दु या रेखा जैसा है, जिसकी कल्पना तो की जाती है मगर जिसे व्याख्या के अनुसार खींचना असंभव है। फिर भी हम चाहे किसी भी स्थान में खड़े हों हमें ध्येय की ओर ध्यान लगाकर शासन और शोषण के घटाने की प्रक्रिया में प्रगति करना है। यह प्रगति स्वावलंबन के आधार पर विकेन्द्रित समाज तथा अर्थ व्यवस्था से ही हो सकेगी।

चरखा-संघ के सेवकों से

हम सब चरखा-संघ रूपी एक वृहद् परिवार के अंग हैं। चरखा-संघ में जो परिवर्तन होगा उसका असर हम सभी पर पड़ेगा। हमारी गति-कीर्ति पर चरखा संघ का भविष्य निर्भर है। क्या आज चरखा-संघ कोई नया कदम उठा रहा है? आपको शंका हो सकती है कि संघ एक बिल्कुल नयी दिशा में जा रहा है, मगर ऐसी बात नहीं है। वह कोई नयी नीति नहीं बरत रहा है। आप चरखा-संघ का विधान देखेंगे तो जान सकेंगे कि खादी उत्पत्ति और बिक्री का काम तो संघ का गौण काम है। मुख्य काम तो जन-जागरण, जन-क्रान्ति और जन-स्वावलंबन का है। हमें तो समय-समय पर जनता को क्रान्ति-संदेश देना है और उसे शक्तिशाली और स्वावलम्बी बनाना है। हम तो '४५ का प्रस्ताव अमल में लाने जा रहे हैं। जब सभी कह रहे थे कि अंग्रेजों को हटाने में एक और आन्दोलन करना होगा, एक और लड़ाई लेनी होगी, तब बापू ने अपनी दूरदृष्टि से देख लिया था कि ब्रिटेन तीसरी श्रेणी का राष्ट्र हो गया है। उससे यह भार ज्यादा दिन तक संभलने वाला नहीं। अतः स्वराज्य तो मिलेगा ही। परन्तु वह कैसा हो? और किन सिद्धान्तों पर आधारित हो, जिससे वह जनता का राम-राज्य हो सके। उस दिशा में कदम उठाना चाहिए। हमें उस दिशा में कदम उठा कर जनता को तैयार करना चाहिए। उन्होंने चरखा संघ के लिए कह दिया कि अब चरखा संघ अपनी काया पलट ले। अब चरखे को समाज की नयी व्यवस्था, नवीन रचना का साधन बनना चाहिए। विकेन्द्रीयकरण और समग्र-ग्राम-सेवा द्वारा आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति लाना चाहिए। किन्तु आज भी कार्यकर्ताओं में चालू काम चलाने की वृत्ति है। आदरणीय विनोबा ने एक बार कहा था कि चरखा संघ में क्रान्ति प्रवण कार्यकर्ता नहीं है, सब बापू के आई. सी. एस. हैं। उस समय हममें हिम्मत नहीं थी। पर आज गान्धीजी की कही बात स्पष्ट नजर आ रही है। उनके सामने हमने काम

नहीं किया हो। कदाचित हम इस भरोसे पर रहे कि बापू तो हैं ही। मगर अब उनके बाद उनके अमूल्य संदेश को समाज में फैलाने की जिम्मेदारी चरखा संघ पर आगयी है। आपमें से बहुत से चरखे की तादाद बढाने और चरखे को फैलाने की बात करते हैं। किन्तु सन '२५ से अब तक हमने क्या किया ? कितने नए चरखे चले ? हम ज्यादा नहीं चला पाए। बावजूद उद्योगीकरण के जो चलते थे उनमें सुधार किया। साथ-साथ कुछ नए भी चालू गए। हम जितने चलाते थे उससे बीस गुने ज्यादा देश में चलही रहे हैं। किन्तु हमने वस्त्र समस्या को हल नहीं किया। केवल देश को एक विशाल संभावना की दिशा में चलने को रास्ता दिया। उत्पत्ति की एक राह हमने जनता को दिखाई। कम से कम वह काम तो हो गया है। आज हमें आगे बढना है। लेकिन हम आज भी उसी लकीर को पीटते रहे क्यों ? '४५ में महात्माजी द्वारा रखे चरखा संघ के नवसंस्करण के प्रस्ताव को मंजूर करने पर भी हमने कदम क्यों नहीं उठाया ? कारण यही कि हम रूढि में उलझे हुए थे। एक-ब-एक परिवर्तन करना आसान नहीं है। हम पर पिछली कुछ जिम्मेदारियां भी हैं। उन्हें हम एकदम छोड़ नहीं सकते। साथ ही उत्पत्ति-बिक्री का यह काम भी तो महात्माजी की इच्छा से हुआ था। हर चीज आपने स्थान पर कीमत रखती है। घोडा अस्तबल में बिकता है। यदि स्थान-च्युत हो गया तो वह बेकार हो जाता है। सन '२४ में नेताओं को जनशक्ति का भरोसा छूट गया था। वे राज्यशक्ति का भरोसा करके कौंसिल में गये। गान्धीजी जेल में थे। बाहर आकर वे जन-शक्ति के भरोसे का उपाय सोचने लगे। उन्होंने देश में घूम-घूम कर जन-सम्पर्क स्थापित किया। उस समय बेकारी थी। जनता आर्थिक गुलामी में बेचैन थी, कपड़े की मांग पूरी करनी थी। यही उस समय का स्वराज्य था। अतः चरखा संघ ने खादी उत्पत्ति-बिक्री के काम को हाथ में लिया। यही उस समय ठीक था।

आज परिस्थिति बदल गयी है। अंग्रेज चले गए। अब बेकारी का प्रश्न भी हल सा है। चरखा अब गरीबों का सहारा नहीं है। अतः अब हमें

भी अपनी पुरानी परिपाटी, रूढ़ी छोड़नी है। उससे चिपके नहीं रहना है। अब तो शासन, शोषण और वर्ग-हीन समाज बनाना है। उसके लिए जन-सम्पर्क बढ़ाना है। एक प्रश्न हो सकता है कि देश में आवश्यकता-पूर्ति की समस्या है। आप कहेंगे कि फिर खादी क्यों न निर्माण करते रहें ? हम मानते हैं कि मजदूरी द्वारा खादी की उत्पत्ति-बिक्री, पूर्ति की समस्या का एक अंग जरूर है, पर वही सब कुछ नहीं है। ऐसे काम के लिए सरकार बनी है। वह चरखा-संघ का काम नहीं है। उसे तो मुख्य समस्या को हल करना है। और जिसकी बुनियाद है स्वावलम्बन और विकेन्द्रीयकरण। अब मजदूरी देकर उत्पन्न की गयी खादी से आवश्यकता-पूर्ति न होगी। वह हो सकेगी तो स्वावलम्बन के जरिए ही। अतः हमें असली मानी में मांग पूरी करना है।

सन् '२४ जैसी आज भी निराशा की स्थिति है। लोग सरकार की ओर ताकते हैं। स्वराज्य हुए एक साल होगया, पर ऊपर से कुछ नहीं टपका। आज लोगों में कुछ करने की मनोवृत्ति आने लगी है। कांग्रेस अधिकार के तथा पदों के पीछे पड़ी है। सरकार आन्तरिक झगड़ों और बाह्य हमलों में फँसी है। यदि जनशक्ति का निर्माण तथा समुचित संगठन न हुआ तो जनता तानाशाही के पीछे चली जायगी। क्योंकि आज की पूर्ति-समस्या अति वेगवती है। अतः आज सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न जनशक्ति-निर्माण और उसके द्वारा जन-तंत्र स्थापन का है। चरखा संघ यही करना चाहता है। आप पर इसकी जिम्मेदारी है। जन-भावना अनुकूल है। परिस्थिति भी इस क्रान्ति को स्वीकार करेगी। जनता ही क्रान्ति ला सकती है, मगर यदि उचित मार्गदर्शन न हुआ तो वह गुमराह होकर प्रतिक्रान्ति में फँस सकती है।

इस परिस्थिति में हम चरखा संघ वाले, अपने उन मित्रों से कहते हैं, जो अभी तक हमारा साथ देते आए हैं कि आप खादी उत्पादन और विक्रय का काम संभालें, और हमें एक कदम और आगे बढ़ने दें। हम समग्र-ग्रामसेवा और सर्वोदय समाज का काम करें। भारत की अधिकांश संस्थाएं

उलझन में फँसी हैं। चर्खा संघ जैसी एक-दो संस्थाएँ ही बची हैं, जो कालेबाजारी और रिश्वतखोरी से बची हैं। ,अतः चरखा संघ अभी इस काबिल है जो आज की क्रान्ति में कूद पड़ सकता है और क्रान्तिकारी किसान-मजदूरों की सहायता कर सकता है।

अभी जो राज्य मिला है वह बाबुओं का राज्य है। वे किसान-मजदूर के नामपर राज्य चला रहे हैं। किन्तु जनता यदि शीघ्र सचेष्ट न हुअी तो वह किसान-मजदूरों पर राज्य चलाने लगेंगे। हमें यह परिस्थिति आने की नौबत न आने देनी चाहिए। हमें तो किसान-मजदूरों का राज्य बनाना है। अब स्वदेशी राज्य को स्वराज अर्थात् रामराज्य बनाना है। हम उत्पादकों के बीच उत्पादक बनकर रहना चाहते हैं और एक उत्पादक वर्ग ही चाहते हैं, अन्य कोई नहीं। हमने तो अभी जो काम किया है वह विदेशी राज्य बदलकर स्वदेशी राज्य कायम करने का। मगर अब स्वदेशी राज्य को जनता का राज्य बनाने का काम करना है। उसके लिए वर्गहीन समाज बनाना होगा। वर्गहीन समाज के लिए यदि हम उत्पादक नहीं बनेंगे तो हमारी उपयोगिता खतम हो जायगी। जब हमने स्वराज्य की लड़ाई के लिए तपबल इकट्ठा किया और वह मिला तो अब हमें फिर रामराज्य बनाने लिए तपस्या करनी है।

एक दाम में दो चीजें कैसे मिल सकती हैं। चीज मिली तो एक में ही दाम खत्म हो जायगा। अब नयी क्रान्ति के लिए नया तपबल एकत्र करना होगा, संयम रखना होगा। त्याग करना होगा। क्या आप त्याग करने को तैयार हैं? आप के पास कोई पूंजी तो है नहीं जिसे आप त्याग देंगे। आप को अपनी जिन्दगी के तरज-तरीके का त्याग करना है। बाबूपन के रहनसहन वाले तरीके को छोड़ना होगा। किसान-मजदूर बनकर उनके बीच जाकर बैठना होगा। उन में साहस, आत्म निर्भरता, स्वावलम्बन भरकर क्रान्ति के लिए तैयार करना होगा। उनमें प्रेरणा का संचार कर, आत्म विकास और नेतृत्व की भावना भरनी होगी। जब अेक नेतृत्व, प्रेरणा, साधन और व्यवस्था से राज्य चलेगा तब ही जनता का राज्य होगा।

एक समय था जब धर्म का बोलबाला था। उस समय क्रान्ति को धर्म का रूप दिया जाता है। ब्राह्मण त्याग-तपस्या करके क्रान्ति करते थे। फिर राजाओं का युग आया। राजाओं ने दुष्ट-दमन और शिष्ट-पालन के द्वारा क्रान्ति की। फिर आर्थिक युग आया। अभीतक वैश्यवर्गों ने अपने परिभ्रमण, व्यापार नीति से क्रान्ति की, किन्तु यह युग भी अब बीतता-सा नजर आ रहा है। यह संक्रमण काल है। अर्थ-युग से जुता हुआ श्रमयुग आ रहा है। इसलिए इस क्रान्ति का अग्रदूत-श्रमिक वर्ग ही होगा।

किसान-मजदूर परिश्रम से कमाकर खा रहा हैं। बाबू लोग उनकी कमाई पर भरोसा करते हैं। किसान के परिवार का सात साल का बच्चा भी कमाने वाला होता है। आपने मां-बाप के साथ काम करता है। किन्तु बाबू परिवार का १४ साल का बालक भी पराश्रयी होता है। मां-बाप की कमायी का उपभोग करता है। बाबू दूसरों का शोषण करता है। बाबू का परिवार उस बाबू पर ही निर्भर रहता है। इस परिपाटि को मिटाना है। आपको सपरिवार अपनी बनायी खादी पहननी है। सस्ता ही नहीं, मुफ्त में मिला मिल का कपड़ा त्यागना है। क्योंकि वह हमारे सिद्धान्त के प्रतिकूल है। हमारे उचित तर्ज-तरीकों में बाधक है। हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि पूर्ण रूप से मजदूर बनाने में कितना समय लगेगा। हम प्रारम्भ करें और अपनी प्रगति कायम रखें, यही पर्याप्त है। आपके सम्पर्क में आने वाले गांव-वाले स्वयं क्रान्ति को अपनाते जायंगे। आज हमारा कार्यक्रम यही है। जो वेतन संघवालों को मिलता है वह मिलता रहेगा। आज तो आप कुछ भी नहीं कमा रहे हैं, सारा भार संघपर है। आप सपरिवार कताई-बुनाई सीख कर उसके जरिए तथा बागवानी के द्वारा अपनी ज्यों-ज्यों कमायी बढ़ाते जायेंगे, चरखा संघ से उतना भार कम करते जाओगे। आपकी कमाई और आवश्यकता में जो अन्तर होगा उसका प्रबन्ध चरखा संघ करेगा। अपने पास की सारी पूंजी वह इसमें लगाएगा। ऐसा विश्वास है कि संघ तबतक मदद करता जायगा जब तक आप स्वावलंबी नहीं होते। अगर आपकी पूर्ति मजूरी से नहीं होगी तो आपकी सेवा से जनता उतना पूरी करती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

अंत: चरखा संघ ने कमाने का अथवा व्यवसायिक खादी-उत्पत्ति द्वारा व्यवस्था खर्च निकालने का तरीका छोड़ दिया है, इसकी चिन्ता न करे। जरूरत पड़ने पर चरखा संघ जनता से चंदा मागेगा। आप स्वयं इसमें योग देंगे। अगर आपके काम का लाभ जनता को दिखलायी पड़ा तो वह स्वयं आपके लिए चन्दा एकत्र करेगी। वह आपको जरूरतों की पूर्ति न होने के कारण जाने न देगी। आज जनता घबराती है आपके बाबूपन के खर्च से। आपके परिश्रमी बन जाने पर आपके परिश्रम की कद्र आपकी आवश्यकता पूर्ति करेगी। जीवन-स्तर यदि बढ़ना है तो सबका, केवल कार्यकर्ता का ही नहीं, ऐसा ध्यान में रखना होगा। आज चरखा संघ चन्दा लेता है, किन्तु वह सूत के रूप में सहयोगी सदस्य बनाकर। यह सही तरीका है। क्योंकि वह हमारे ध्येय से सम्बन्धित है। पूंजीपतियों से पैसे लेने का तरीका हमारी क्रान्ति के लिए उपयोगी नहीं। इसीलिए गांधीजी कहते थे कि संस्था में कभी पूंजी इकट्ठी नहीं करनी चाहिए। जिन संस्थाओं ने पूंजी इकट्ठी कर उसके व्याज में अपना खर्च निकालने का प्रबन्ध किया वे आज तान्त्रिक, जडवत-निर्जीव बन चली हैं। नवजीवन से उनका सम्पर्क—सम्बन्ध टूटता जा रहा है। इसीलिए गीता में भगवान ने भक्त के लक्षणों में नित्यतृप्त और निराश्रय को स्थान दिया है। वही चेतन है। वही कुछ कर दिखा सकता है। पैसा मुख्य नहीं है। आदमी न हो तो पैसा बेकार है। पैसा न होनेपर भी आदमी कुछ करके दिखा सकता है।

जो क्रान्ति आप अपने रहन-सहन में करेंगे वह प्रतिफलित होगी। उसका प्रभाव दूसरों पर पड़ेगा। आपको देखकर जनता का समूह राह बदलेगा। चरखा संघ वाले तथा उनके साथ देनेवाले क्रान्ति के अग्रदूत बनेंगे। वे हिम्मत से आगे चलेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी। रूस का रास्ता चाहे लुभावना हो, पर वह पुरानी परिस्थिति पर आधारित है। आज बेमौजूं और गलत है। वह केन्द्रीय पद्धतिपर आधारित है। उससे स्वभावतः स्टालिन पैदा होगा, जो अधिनायक बन जायगा। उसमें न तो व्यक्ति विकास होगा और न जनतंत्र को अवकाश मिलेगा। १८४८ के बाद पूरे सौ साल गुजर चुके हैं। जमाना बदल चुका है। उसकी आज की मांग पूंजीवाद के नाश की नहीं हैं। पूंजीवाद तो मर

ही रहा है। आज का तकाजा है अधिनायक तंत्र के खिलाफ आवाज उठाने का। जनतंत्र का स्थापना, वर्गहीन समाज की रचना करनी है। इसलिए वर्गों को समाप्त कर शासन का दायरा घटाना है। परिश्रम, विकेन्द्रीकरण, स्वावलम्बन, स्वायत्त सत्ता को प्रतिष्ठित करना है। यह गान्धी का युग-दर्शन है।

आप तर्क-वितर्क के झोंके में न पड़ें। शंकित और भ्रमित न रहें। इनका तो कभी अंत होनेवाला ही नहीं। पर विचार तो आप अवश्य करें। शुद्ध बुद्धि से विचार करें और काम में लग जायें। अनुभव से जो ज्ञान का विकास होगा वही शंका-कुशंका, तर्क-वितर्क आदि को दूर कर देगा। पानी के बाहर तैरना कैसे सीखेंगे? किताब पढ़ कर या तर्क वितर्क करके प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होगा? हो सकता है कि तैरना सीखने के प्रारम्भ में थोड़ा नाक कान में पानी जाए। मगर साहस चाहिए, सहन-शक्ति चाहिए फिर आप समस्या पर सवार हो सकेंगे।

चरखे का एक युग समाप्त हो चुका है। अब जड़वत् चरखा चलाने, मजदूरी देकर सूत के ढेर लगाने से काम नहीं होगा। उसे तो सत्य और अहिंसा का प्रतीक बनाना है, इसे समझ लेना चाहिए। बापू के 'समझबूझ कर कातो' के तत्व को गहराई से समझना चाहिए। ईसा का पृथ्वी पर प्रभु का राज्य अथवा कार्ल मार्क्स का शासनहीन समाज और बापू का रामराज्य तभी आवेगा जब हम आत्म तत्व को समझेंगे। इन्सान पर इन्सान का राज्य नहीं चलाना है, यह जानकर आपको उस ओर बढ़ना है। आपके सूत कातने के कमजोर लाक्षणिक कदम से भी जनता में एक मनोवैज्ञानिक लहर बिजली सी दौड़ जावेगी। आपपर यह नैतिक जिम्मेदारी है। आपको उत्पादकों के साथ तादात्म्य करना है। यह तभी होगा जब आप पारिवारिक कार्य के लिए नौकर न रखें, स्वयं सम्पूर्ण काम करें, स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बनें। चर्खा संघ के कार्यकर्ताओ ने जो अब तक किया है उसे योग्यता, कुशलता तथा ईमानदारी से करके सफल बनाया है। मुझे आशा है कि हमारे कार्यकर्ता आज इस नयी क्रान्ति में भी पीछे नहीं रहेंगे।

ग्रामस्वावलंबन के कार्यकर्ताओं से

[कृष्णदास गांधी]

पिछले अध्याय में श्री धीरेन्द्र भाओने चरखा संघ के आज के कर्तव्य और खादी के बारे में कुछ विचार विस्तार से आपके सामने रखे हैं। खादी केवल कपड़ा नहीं है, अुसके पीछे अेक विशेष विचार और विशेष दृष्टि है। खादी काम करके हमें कपड़ा भी पैदा करना है और विचार भी। विचार अैसा पैदा करना है कि जिससे सामाजिक क्रान्ति हो। समाज में जो बदल हम लाना चाहते हैं, वह न तो केवल खादी बनाने से ही होगा और न केवल विचारों के प्रचार से ही होगा। दोनों का मेल करना होगा। आचार और विचार साथ साथ चलाने होंगे। कपड़ा मिल से भी पैदा हो सकता है; और हम चरखे से पैदा करने का आग्रह रखते हैं। कपड़ा चरखे से पैदा करने के काम का जितना आचार आज तक हमने किया, अुतना विचार नहीं किया। हमारा आचार भी, खादी की पैदाअिश की व्यवस्था का आचार रहा। प्रत्यक्ष पैदाअिश का बहुत कम रहा। यहां तक कि महीने की साढ़े सात गुंडी सूत के नियम की भी कार्यकर्ताओं को बार बार याद दिलानी पड़ी। पूज्य बापूजी के विचार-प्रचार के बल पर हम काम करते रहे। लेकिन अब वे हमारे बीच नहीं रहे। अब उनकी श्रद्धा के बल पर नहीं, हमें अपनी श्रद्धा के बल पर खादी का काम चलाना होगा। वह तभी चल सकता है जब हमारी श्रद्धा अंधश्रद्धा न हो। और अिसलिये खादी क्यों, खादी का तरीका क्या, अिस बारे में हममें से हर अेक को खुद अपने दिल के भीतर सोचना होगा। मैं अपने खुद के लिए जानता हूँ कि अितने दिन खादी का जो कुछ काम किया अुसके मुकाबले में ये बातें मैंने बहुत कम सोची थीं। अैसी ही हालत हमारे और साथियों की भी पायी जाती है। यही वजह थी कि जब बापूजी ने समग्र ग्राम सेवा को खादी के तेजस्वी कार्यक्रम के रूप में सामने रखा, तब हम सहम गये। अितना ही नहीं,

चरखा संघ के वस्त्रस्वावलंबनसंबंधी प्रस्ताव मे कुछ कार्यकर्ताओं के दिलों में घबराहट और भय पैदा हुआ। लेकिन ऐसी हालत भी फायदेमंद हो सकती है, बशर्ते कि वैसा डर हमारे मंथन का कारण बने। हम गहराओ से सोचें, हम काम का गहरा परीक्षण करें और हर तरह से अभ्यासी बनें। अपने को खादी का कार्यकर्ता मानने के बजाय खादी-विद्यार्थी मानें।

अगर आप चरखा संघ के पुराने अहवाल पढ़ेंगे तो पायेंगे कि खादी के काम का अंतिम लक्ष्य वस्त्रस्वावलंबन ही हो सकता है। यह बात चरखा संघ ने बार बार जाहिर की है। लेकिन उस जमाने में चरखे के बारे में लोगों के दिलों में दो तरह का डर था। हमारे अिस्तेमाल के लिये जिनकी जरूरत है असे सब तरह के कपडे चरखे से बन सकते हैं या नहीं, अैसी आशंका थी और चरखे से पर्याप्त कपडे बन सकते हैं या नहीं यह दूसरी शंका थी। पिछले पचीस सालों में पहली शंका का निवारण चरखा संघ ने किया है। वैसा करने में उसे वस्त्र-स्वावलंबन के कार्यक्रम के बदले मजदूरी देकर खादी पैदा करवाने पर ज्यादा जोर देना पड़ा। यह करते करते खादी की राहत देने की शक्ति और जीवन वेतन के सिद्धांत का दर्शन और प्रचार भी संघ ने किया। हमारी अधिकतर शक्ति उसमें लगी। कार्यकर्ताओं ने इस कार्यक्रम के पीछे त्याग, तप, परिश्रम और अपनी जिंदगी का मौलिक से मौलिक वक्त इसे सफल बनाने में अर्पित किया। लेकिन वस्त्रस्वावलंबन का कार्यक्रम उसका मुख्य लक्ष्य होते हुअे भी पिछड़ता गया, क्योंकि उसी एक मकसद को पूरा करने में संघ लगा रहा। यहां तक कि आज वस्त्रस्वावलंबन पर हमारा सारा ध्यान और सारी शक्ति केन्द्रित करने का प्रस्ताव हमें नई बात मालूम हुई। वस्त्रस्वावलंबन चरखा संघ के लिये कोई नई बात नहीं है। हम लोगों की नजर लक्ष्य की ओर न रहने से और खादी-विचार का अभ्यास न करने से हमें यह नई बात मालूम पड़ती है।

केवल तात्विक दृष्टि से नहीं, व्यावहारिक दृष्टि से भी आप सोचेंगे तो पता चलेगा कि वस्त्रस्वावलंबन के बिना खादी पैल ही नहीं सकती; चरखे

से पूरे कपडे नहीं मिल सकते। अगर सारा हिन्दुस्तान खादी पहनना चाहे तो मजदूरी की कताई से नहीं पहन सकता। थोडी सी मिलें देश भर को कपडा दे सकती हैं। पर चरखे के थोडे से अुत्पत्ति-केन्द्र देशभर को कपडा नहीं दे सकते। जिस तरह घर की गाय घरवालों को दूध दे सकती है, अुस तरह चरखा घरवालों को अपनी जरूरत का सूत दे सकता है। हिंदुस्थानभर के लोग खादी खरीद कर नहीं पहन सकते, वह खुद बनाकर पहन सकते हैं। थोडे से अुत्पत्ति-केन्द्र निकाल कर खादी की विविध किस्में बन सकती हैं अैसी श्रद्धा तो लोगों में हम पैदा कर सके हैं, लेकिन चरखे से देशभर के लिये पर्याप्त कपडा बन सकता है अैसी श्रद्धा पैदा करना अभी बाकी है। वह वस्त्र-स्वावलंबन के जरिये सिद्ध हो सकता है। यह पैदा करना ही अब संघ का मुख्य कार्यक्रम है।

हमारे बड़े बड़े अर्थशास्त्री कहते हैं कि चरखे से कपडा कैसे पूरा होगा। वे सोचते हैं कि हिंदुस्तान के लिये साल भर में कम से कम ६०० करोड और संभव हो तो १२०० करोड वर्गगज कपडा चाहिये। हमारे अुत्पत्ति केन्द्र तो मुश्किल से अेक करोड वर्गगज खादी पैदा करते हैं। कहाँ एक और कहाँ छ सौ या बारह सौ करोड! वे अपने प्लेनिंग में अिस तरह के बडे बडे गुणाकार करके चरखे की शक्ति के बारे में साशंक बन जाते हैं और लोगों को डरा देते हैं। यही डर मुल्क को पंगु बना देता है। केन्द्रीकरण की मनोवृत्ति का यह अेक नमूना है। अुनकी तुलना में सही गलती वे समझ नहीं सकते। सोचना यह चाहिये कि अगर कोअी अेक कुटुंब चरखे से अपना कपडा बना लेता है तो सारे कुटुंब अपना कपडा क्यों नहीं बना सकते? आज घर घर रसोअी होती है। अगर अिसका भी केन्द्रित प्लेनिंग किया जाय तो हमारे सामने डरावने आँकडे दीखने लगेंगे। ४० करोड के समाज के लिये रोजका ४० करोड रतल अनाज पकाना यानी साल भर में ३६५×४०=१४६०० करोड रतल अनाज साफ करना, पीसना, धान कूटना, खरब के करीब फुलके बेलना और पकाना, अरबों मनों के करीब सब्जी काटना, करोडों चूल्हे जलाना, औसत पांच व्यक्ति के अेक कुटुम्ब में

अेक व्यक्ति रसोई के काम में लगेगा। अिसलिये रोजाना ८ घंटे के हिसाब से ३६५×८×८=२३३६० करोड यानी २३ खरब घंटे मनुष्य शक्ति सर्फ करना आदि आदि डरावने आंकडे सामने आयेंगे। लेकिन आज अिन आंकडों के प्रेनिंग के बिना ही घर घर रोटी पकती है। अिसी तरह अेक जमाने में कपडा भी घर घर बनता था। आज भी घर घर वह पैदा हो सकता है, मगर वह मजदूरी से कतवा कर नहीं, वस्त्र-स्वावलंबी कताई के जरिये ही हो सकता है। मजदूरी की कताई से 'किस्मों' की समस्या हमने हल की। वस्त्र-स्वावलम्बी कताई से 'तादाद' की समस्या हल करनी है।

अब सवाल आता है कि अिसके लिये हम क्या करें; हमारे मौजूदा काम को किस तरह बदलें। यह बदल तभी हो सकता है जब कि कार्यकर्ता पहले अपने दील को टटोल लें। वह खुद अच्छी तरह सोच ले कि खादी वस्त्र-स्वावलंबन से ही बढ सकती है। यह विचार उसे जँचता है या नहीं। अगर जँचता है तो जिस तरह मजदूरी की कताई में तरह तरह की कोशिशें और योजनायें कर के हमने काम किया उस तरह वस्त्रस्वावलंबी कताअी के लिये भी वह कोशिश शुरू कर दे। अपनी योजना बनावे। 'मजदूरी' की खादी का काम करने में हमने खुद खादी पहनने का आग्रह रखा था। स्वावलंबी खादी के काम के लिये भी खुद से आरंभ करना होगा। खुद कातना होगा। यह कताअी परावलंबी पूनी से नहीं बल्कि स्वावलंबी पूनी से करनी होगी। हजारों, लाखों कातनेवालों के लिये पूनी खरीदना संभव नहीं। उन्हें पूनी मुहैय्या करना भी संभव नहीं। पूनी में भी उन्हें स्वावलंबी बनना होगा। उसीके लिये तुनाई का आग्रह किया जा रहा। तुनाअी का महत्त्व गति की तुलना से नहीं, स्वावलंबन पद्धति की तुलना से आपके खयाल में आ जायगा। अगर स्वावलंबन के रास्ते पर चलना है तो आपको तुनाई को अपनाना होगा। खुद तुनाई करनी होगी। आज कल हमारे यहाँ सेवाग्राम में सूत्रयज्ञ बंद कर दिया गया है। उसकी जगह 'पूनी यज्ञ' किया जाता है। सब एक साथ बैठ कर आध घंटा अपना कपास ओट कर तुनाई पद्धति से पूनी बना लेते हैं। कातने का काम हरअेक अपनी सुविधानुसार कर लेता है। अिस तरह अन्दर भी पूनीयज्ञ शुरू

हुए हैं। आप भी पूनीयज्ञ शुरू करें। वस्त्रस्वावलंबन के लिये जो कुछ योजना बने वह कातने वाला खुद अपनी पूनी बना ले—अिसी आधार पर, याने पूनी-स्वावलंबन के आधार पर ही बननी चाहिए। आप खुद अपनी पूनी बनावें, उसी तरह जिन्हें कातने के लिये प्रवृत्त करें, उन्हें भी अपनी पूनी बना लेने का आग्रह करें और उसका तरीका सिखलावें।

आज तक हम खादी के खरीदार के लिए कई बातें सोचते थे। उन्हें खादी सस्ती कैसे पड़ेगी, किस पोशाक के लिए खादी का उपयोग वे किस तरह कर सकेंगे अिसका दिनरात चिंतन करते थे। अब वस्त्रस्वावलंबन को सस्ती खादी कैसे पड़ेगी, यह सोचना है। किस तरीके से खादी पैदा कर लेना हरएक के लिए आसान होगा, अिसका चिंतन करना है। इसे आसान बनाने के लिए किन किस्मों को बढावा देना होगा यह देखना है। यह सब करने के लिए आपको बुनाई तक नजर दौडानी पड़ेगी। बुनाई की समस्या आज वस्त्रस्वावलंबन के काम में एक बडी रुकावट है। उसे हल करने का असली रास्ता बुनाई-स्वावलंबन का है। मगर शायद यह सुनकर ही आप घबरायेंगे कि क्या अब हरएक को हमें कहना है कि वे बुनाई भी करें? कातने के लिए उन्हें तैयार करना पहले ही कठिन है। फिर बुनाअी के लिए कौन तैयार होगा? लेकिन अिसमें घबराने की जरूरत नहीं। जो समस्या है वह तो हमें समझनी ही होगी। वस्तुस्थिति से घबराकर कैसे काम चलेगा? घर घर बुनाई हो यह निरा स्वप्न नहीं है। आज भी आसाम के कई परिवारों में घर घर बुनाई होती है। उस सामाजिक रिवाज को हमें नजर में तो रखना ही चाहिए। अगर आज बुनाई तक हरएक कातने वाला न जा सके तो जिस तरह तुनाई का आग्रह हमें हर एक के लिए रखना है, उसी हद तक बुनाई का आप हरएक से आग्रह न करें। लेकिन आपको खुद को तो यह आग्रह अवश्य रखना चाहिए कि अपना सूत आप स्वयं बुन लेंगे। अिसके लिए आपको खुद बुनाई सीखनी होगी। आज तक तराजू से तौलने और हिसाब रखने का काम करके या काउंटर पर गज-कैंची लेकर और शुरू में कंधे पर खादी घर घर ले जा कर हमने काम किया। अब प्रत्यक्ष तुनाई, कताई

और बुनाई का काम करते करते और घर घर या केन्द्रों में इन प्रक्रियाओं को दूसरों को सिखला कर और उसका हेतु उन्हें समझाते हुए हमें खादी का काम करना होगा। राहत की खादी के बदले वस्त्रस्वावलंबी खादी का काम करने के लिए यह बुनियादी तबदीली हरएक कार्यकर्ता को करनी होगी।

कार्यकर्ता के बुनाओ करने से यह लाभ भी होगा कि जो कातनेवाले खुद नहीं बुन सकते हैं, उनका कुछ सूत तो वह स्वयं बुन देगा। बाकी सूत के लिये अिर्दगिर्द में नये बुननेवाले वह पैदा कर सकेगा। मिल सूत बुननेवाले हाथसूत बुनने से हिचकते हैं, तो उन्हें वह हिम्मत दे सकेगा। पाई आदि में सहायता करके हाथसूत बुनने का रास्ता बतला सकेगा। अगर मिल सूत बुनने वाले इर्दगिर्द में न हों तो बिलकुल ही नये लोगों को वह बुनाओ सिखला सकेगा।

कातनेवालों का कुछ कुछ सूत कार्यकर्ता खुद बुनता रहेगा तो सूत-सुधार भी बहुत जल्दी होगा। जिसका सूत खराब होगा वह देख सकेगा कि उसका सूत बुनने में कितनी दिक्कत होती है। खास कर हम खुद सूत बुनते हुए कातनेवालों को सूत के दोष समझायेंगे तो वे अपने सूत के दोष जल्दी समझेंगे और अपना सूत सुधारने की कोशिश करेंगे।

अिस तरह की बुनाई करने से सूत में सुधार करके और बुनकर तैयार करके बुनाई की समस्या हल करते करते एक दूसरा नतीजा भी निकाला जा सकता है। हम जानते हैं कि किसान और गरीब देहाती के लिये बुनाई की मजदूरी देना एक बड़ा बोझ है। गज पीछे आठ, दस या बारह आना बुनाई वह कैसे दे सकेगा? अगर सूत अच्छा काता जाय तो बुनाई अिससे कुछ कम लगेगी और हम खुद बुनेंगे तो उसके सूत से हमें होनेवाली तकलीफ उसे बतलाकर प्रेम से सूतसुधार का काम भी एक हद तक होगा। लेकिन अच्छे सूत की बुनाई के खर्च से भी कातने वाले को संभव हो उस हद तक हम बचाना चाहते हैं। ऐसा खर्च बचाने का एक उपाय दुवटा है।

जिस तरह बुनाई में गति की तुलना की अपेक्षा स्वावलंबन की तुलना का महत्व है, उसी तरह दुबटे की तुलना हमें कपडे की किस्मों की अपेक्षा स्वावलंबन का आग्रह नजर में रख कर करनी होगी। तभी दुबटे का महत्व ठीक समझ में आ सकेगा। मिल के कपडे से छुटकारा पाने के लिये चाहे जैसी मोटी खादी पहनने का आग्रह रखा तब कहीं हम खादी में प्रगति कर सके। स्वावलंबन के लिये अगर हम एकसूती खादी की तुलना छोड कर दुबटा का आग्रह रखेंगे तो उसमें भी हम अवश्य प्रगति कर सकेंगे। आज कल हममें यह प्रयोगदृष्टि न रहने से दुबटे की मोटी किस्मों में हम आनंद व संतोष नहीं महसूस करते कि जो अुस जमाने में मोटी खादी में करते थे। लेकिन हमें वस्त्रस्वावलंबन का काम करना है, अुसके प्रचारक बनना है तो अिस तरहके दुबटे के प्रयोग बुनाअी में और खुद दुबटा पहन ने में भी करने होंगे। जिस तरह हमने खादी ही पहनने का नियम किया अुसी तरह संघ का कार्यकर्ता दुबटा ही पहने, यह आग्रह हम क्यों न रखें! लेकिन अिस वक्त दुबटा के संबंध में मैं ज्यादा नहीं कहूंगा। दुबटा से बुनाअी का खर्च कम बहुत होगा यह आप अवश्य ख्याल में रख लें।

दुबटा के अलावा भी बुनाअी सस्ती करने का एक रास्ता यह है कि अपने अपने सूत की बुनाअी में कातने वाले की सहायता ली जाय। आप शायद नहीं जानते हैं कि बुनाअी में सूत खोलना, ताना करना, नरी भरना, माडी लगाना और बुनना, अिन प्रक्रियाओं में प्रत्यक्ष बुनाअी का वक्त अेक तिहाअी या अुससे कम लगता है। हमारी परीक्षा में ८ गजी थान बुनने का वक्त ३६ घंटे का रखा है। अुसमें प्रत्यक्ष बुनने के लिये १२ घंटे ही रखे गये हैं। पाअी करने और करघे पर लगाने के लिये आठ घंटे का वक्त रखा गया है। अगर कातने वाले पाअी करने के पहले की प्रक्रियाअें खुद कर लेता है और पाअी में मदद देता है तो आठ या दस आने की जगह अुसे तीन या चार आने गज की बुनाअी देनी पडेगी। आज भी दक्षिण भारत के कअी स्थानों में कातनेवाले ताने बनाकर ही बाजार में बेचते हैं। कातनेवाला वैसा ताना सीधे तकुवे से बना सकता है और अुससे

गुंडी परेतने का और खोलने का, दोनों का वक्त बच जाता है। अिस तरीके से राष्ट्र के कपडा पैदा करने के कुल वक्त में बचत हो सकती है।

संक्षेप में, अगर कार्यकर्ता बुनाअी करेगा तो—

(१) मुफ्त में कपडा कैसे बनाया जा सकता है अिसका मार्गदर्शक बन सकेगा।

[२] हाथ सूत बुननेवाले जुलाहे तैयार कर सकेगा।

[३] बुनाअी सस्ती कर सकेगा।

[४] कपडा पैदा करने के कुल वक्त में बचत कर सकेगा।

[५] और खुद अुत्पादक परिश्रमी बनकर देहातियों में घुलमिल सकेगा।

आज हम मजदूरी देकर भी खादी का जो काम कर रहे हैं अुसमें कारीगरों के साथ घुलमिल नहीं गये हैं। आज जुलाहों से हमारा संबंध जुलाहे के नाते नहीं मगर पैसे चुकानेवाले के नाते आता है। यही कारण है कि अुनसे पंद्रह-बीस साल का संपर्क रहते हुअे भी वे बीच बीच में पैसे के प्रलोभन से मिल सूत बुनने लग जाते हैं।

श्री धारेन्द्रभाअी ने हमें अुत्पादक बनने का महत्व समझाया है। आज हम व्यवस्थापक हैं। अब हमें अुत्पादक भी बनाना है। आज की हालत को आप सोचिये। कारीगर कहता है, मजदूरी नहीं पुसाती। व्यवस्था करनेवाला कार्यकर्ता कहता है, वेतन बहुत कम है। खादी ग्राहक कहता है, खादी बड़ी महंगी है। अिस तिकोनी खिंचाव को कैसे सन्तुलित किया जाय? अगर तीनों अपनी खींचातानी कायम रखें तो क्या होगा? आज यह हालत केवल खादी में ही नहीं है। मिलों में भी यही हालत है। दुनिया भर में यही हालत है, क्यों कि उत्पादक, दलाल और ग्राहक ऐसे तीन वर्ग पड गये हैं। उनकी खींचातानी में से वर्गविग्रह और विश्वयुद्ध होते रहते हैं। पूज्य बापूजी ने बतलाया है कि इसे टालना हो तो छोटी इकाई में तीनों का

समन्वय करो। खुद ही उत्पादक बनो, खुद ही ग्राहक बनो। दलाल का तो प्रश्न ही नहीं रह जाता। सिन्दबाद के बूढ़े की तरह वह हमारे कंधे पर सवार है। उसका बोझ अपने आप उतर जायगा। छोटी इकाई में स्वावलंबी बनने से संघर्ष टलेगा, हिंसा टलेगी। ऐसे स्वावलंबन का उपाय चरखा व ग्रामोद्योग है। इसीलिये पूज्य बापूजी ने चरखे को संघर्ष से याने हिंसा से मुक्ति दिलानेवाला और अहिंसा का प्रतीक कहा और आखिर तक हमें वे यह कहते रहे। लेकिन चरखे की उस शक्ति के दर्शन के लिये हमें केवल व्यवस्थापक रह कर नहीं चलेगा। चरखे के कार्यक्रम में भी हम ऐसे विभाग कर देंगे तो कैसे चलेगा? हमें उत्पादक भी बनना होगा। उत्पादक बनने के लिये हम बढ़ई भी बन सकते हैं, हल भी जोत सकते हैं, लुहार, मोची, चमार आदि भी बन सकते हैं। मगर वस्त्रस्वावलंबी खादी का काम करने वाले के लिये बुनाई के जरिए आज उत्पादक बनना क्यों सब से ज्यादा कारगर साबित होगा, जिसके कुछ पहलू मैंने आपके सामने रखने की कोशिश की है। उसका मतलब यह नहीं है कि कोई कार्यकर्ता दूसरा कोई तरीका सोचे ही नहीं। वह अपनी बुद्धि से अवश्य सोचे और उसे दूसरा मार्ग दिखे तो उस पर वह अमल करके देखे। उसके अनुभव का लाभ संघ भी उठा सकेगा।

बुनाई का काम कार्यकर्ता सपरिवार कर सकेगा यह भी नहीं भूलना चाहिए। आज सपरिवार बुनाई करनेवाला जुलाहा चरखा संघ के कई वैतनिक कार्यकर्ताओं से ज्यादा कमा लेता है। हमारे सामने वेतन की भी विकट समस्या खड़ी है। आज मध्यम वर्ग के ज्यादा तर लोगों के सामने यह समस्या है। उसका कारण यह है कि मध्यम वर्ग में अेक कमाता है और उस पर कई अवलंबित रहते हैं। धनिकों के समान अवलंबितों को पोसने की संपत्ति मध्यम वर्ग के पास नहीं है, न श्रमिकों जैसी सपरिवार काम करने की प्रथा मध्यम वर्ग में है। इसलिए दोनों तरह से वह तंग आ रहा है। उसके पास न पैसा है न शक्ति। हमारे कार्यकर्ताओं की भी करीब करीब अैसी ही हालत है। हमें इसमें से छूटने का विचार भी करना होगा। आप जानते ही हैं

कि कार्यकर्ताओं के अवलंबितों को उत्पादक परिश्रम की ओर मोडने के लिए संघ ने कुछ-कुछ योजनाएं बनाई हैं वे योजनाएं पर्याप्त तो नहीं हैं मगर उनका हेतु आपको समझ लेना चाहिए। अगर हम अपने परिवार को उत्पादक परिश्रम में लगाने की कोशिश नहीं करेंगे तो हमारी हालत दिन-दिन बदतर होनेवाली है। हम इस तरह जी नहीं सकेंगे। यह ठीक है कि आज तक की आदत और समाज व्यवस्था के कारण एक दिन में हम अपने परिवार के अवलंबितों को काम में नहीं लगा सकेंगे, पर अभी मौका है और हममें से हरएक को यह सोच लेना चाहिए कि धीरे धीरे हमें अपने परिवार में यह बदल लाना है। अगर हम बुनाई में लगेंगे तो परिवार वालों को काम देना बहुत आसान होगा। यह बात भी आप नजर के सामने रख लें।

बुनाई की इतनी बातें सुन कर आपके दिल में एक सवाल उठ सकता है कि क्या हमें पेशेवर जुलाहे की तरह बुनाई करनी है? क्या उसीमें से कमाई की कोशिश करनी है? मैं जानता हूँ कि पेशेवर जुलाहों के जितनी बुनाई करना और उनके जितनी कमाई एकाएक करने लगना हमारे लिए कठिन है। हमें केवल पेशेवर जुलाहे की तरह बुनाई करना इसलिए संभव नहीं कि हमें बुनाई के साथ वस्त्र-स्वावलंबन-प्रचार और प्रक्रियाओं की शिक्षा का काम भी करना है। लेकिन हम दिन भर केवल प्रचार करते रहेंगे या सिखलाते रहेंगे ऐसा खयाल करना भी गलत होगा। हमें अच्छे प्रचारक बनना हो, हमारे प्रचार में तेज लाना हो, जो काम हम करवाना चाहते हैं उनमें आनेवाली गुत्थियां सुलझानी हों तो हमें उन कामों को खुद भी करना होगा। इसलिए हमें मौके पर ग्राम सफाई, बीमार-सेवा जैसे कुछ काम भी खुद करने होंगे। मगर रोजमर्रा का हमारा नीयमित उत्पादक परिश्रम सामान्यतः हम बुनाई का रख लें और चार-पांच घंटे रोज प्रत्यक्ष बुनाई करें। इसीने खयाल से मैंने बुनाई का कार्यक्रम आपके सामने रखा है। मैंने कहा ही है कि अपने अपने अनुभव व रुचि के अनुसार हरएक अपनी मर्यादा व कार्यक्रम तय कर सकता है।

कार्यकर्ता जो बुनाई करे उसीमें उसका निर्वाह हो ऐसी कल्पना हमने नहीं की है। आज कई कार्यकर्ताओं के मन में वस्त्रस्वावलंबन के कार्यक्रम के

बारे में दो तरह का डर दिखाओी पड़ता है। खादी बेच कर व्यवस्था खर्च मिलता था वह वस्त्र-स्वावलंबन के काम में नहीं मिलेगा। वह न मिला तो हमारा खर्च कैसे चलेगा ? यह अेक डर है। दूसरा डर यह है कि वस्त्रस्वावलंबन पर जोर देने से और मजदूरी देकर की जानेवाली खादी उत्पत्ति घटाने मे एक करोड वर्ग गज खादी बनती है वह भी कम हो जायगी। वेतन आदि खर्च का भय आप न रखें। अिस खर्च के बारे में खादी जगत के जून ४८ के अंक में आपने पढा होगा और न पढा हो तो मैं आपको बतला दूं कि आखिर रचनात्मक काम की अन्य संस्थाअें भी चलती हैं, तो किसी व्यवस्था खर्च के भरोसे नहीं चलती। लोगों से दान या चंदा मांग कर चलती हैं। उसी तरह हमारा संघ भी कर सकता है। मतलब यह कि व्यवस्था खर्च के जो दाम हमें खादी बेच कर मिलते थे वह अब हम चंदे के रूप में पाने की कोशिश करेंगे और हमारी सच्ची सेवा होगी तो लोग हमें वह देंगे। ऐसी कसौटी हमारे लिए अच्छी भी है। चरखा संघ अपने कार्यकर्ता को निर्वाह व्यय के लिये वेतन देता रहेगा, जिससे कि वह चिंतामुक्त रह कर काम कर सके। साथ ही कार्यकर्ता से यह अपेक्षा रहेगी कि उसकी सेवा ऐसी हो कि उसके क्षेत्र में से आवश्यक चंदा मिल सके। अिस तरह संघ का नाम और कार्यकर्ता का काम, अिन दोनों के बल पर हमें अपने खर्च का प्रश्न हल करना होगा, कार्यकर्ता का वेतन और उसके केन्द्र के खर्च का अनुपात उसके काम से क्या हो। अिस संबंध में आप खादी जगत् के जून १९४८ के अंक में पृष्ठ ५२२-५२५ पर पढ लीजिये। अिसके अलावा हम संघ की ओर से अवैतनिक सहयोगी कार्यक्रम मुकर्रर करने का भी सोच रहे हैं।

खादी का काम कम हो जायगा अैसा डर लगता हो तो सोचना चाहिए कि आखिर पैसे देकर भी हम कितनी खादी पैदा कर लेते हैं। आप हिसाब देखेंगे तो पता चलेगा कि संघ के हरअेक कार्यकर्ता के पीछे मुश्किल से रोजाना औसत १० वर्ग गज खादी का काम होता है। याने करीब ३५-४० गुंडी का काम होता है। अगर एक कार्यकर्ता इर्दगिर्द १५०-२०० वस्त्र-स्वावलंबी कातनेवाले तैयार कर सके याने रोज ४०-५० गुंडी स्वावलंबी सूत

कतवा सके तो उसके हिस्से आज जितनी राहत की खादी पैदा होती है उतनी वस्त्रस्वावलंबी खादी पैदा होने लगेगी। यह तो साफ है कि उतनी वस्त्रस्वावलंबी खादी की मौलिकता राहत की खादी के मुकाबले में कभी गुना ज्यादा है। आज तक हमने जिस मेहनत के साथ उत्पत्ति का काम किया है उतनी मेहनत के साथ अगर हरएक कार्यकर्ता वस्त्रस्वावलंबन के काम पर जुट जाय तो इतनी वस्त्रस्वावलंबी खादी पैदा करने की हिंमत हमें रखनी चाहिए। इसकी मौलिकता को नजर में रख कर हम कोशिश करके देखें कि हम इतना कर सकते हैं या नहीं। अगर हम इसमें सफल हो सकेंगे तो वह तरीका ऐसा होगा कि खादी फिर कई गुना ज्यादा फैलने लगेगी।

अंत में आपसे अनुरोध है कि वस्त्रस्वावलंबन का काम बढाने का संघ ने जो संकल्प किया है उस ओर आगे बढने के लिए मैंने यह जो चंद कल्पनाएं आपके सामने रखीं उस पर आप खूब गौर कीजिये। प्रत्यक्ष बाह्य प्रक्रियाओं और हमारे विचारों को मिलाते-मिलाते इसमें कई नये तजुरबे आयेंगे। लेकिन कुछ न कुछ सोच कर हमें काम तो शुरू कर ही देना होगा, तभी आगे रास्ता सूझेगा। हमें अपने उत्पत्ति और बिक्री केन्द्रों को अब वस्त्रस्वावलंबी केन्द्रों में परिवर्तित करना है। आप इसका आरंभ किस तरह कर सकते हैं, यह मैंने बताया।

दीखने में तो आपको शायद ये मामूली सी सूचनाएं दीखेंगी। इसमें कौनसी बडी नई योजना मैंने बतलाई ऐसा भी कोई महसूस करे तो मुझे तज्जुब नहीं होगा। लेकिन ये बहुत बुनियादी सुचनाएं हैं। कोई बडी योजना भी अिस बुनियाद के बिना हो नहीं सकेगी। यह बुनियाद हमने पक्की कर ली तो उसीमें से बडी योजना भी निकल सकेगी। इसलिये बुनियाद पक्की करने की आप कोशिश कीजिये। वह करने के लिये मेरी सूचनाएं और आपके अनुभव को मिलाकर आप काम शुरू कर दीजिये। अिस बारे में आप अपने-अपने सुझाव निःसंकोच शाखा के दफ्तर में और संघ के प्रधान कार्यालय में भी भेजा करें। हरएक शाखा में कुछ कार्यकर्ता तुरंत ही अिस तरह वस्त्रस्वावलंबन के काम में लग जायं ऐसी संघ की दृष्टि है। उसमें लगनेवाले कार्यकर्ता अपने नाम हमें दें।